अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रांति का संदेशवाहक

वार्षिक मूल्य ६) 卐 सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार 卐 एक प्रति २ आना

वर्ष–३, अंक–४ 卐 राजघाट, काशी 卐 शुक्रवार, २६ अक्टूबर, '५६

सबसे महान् !

एक बार नारद मुनि ने विष्णु भगवान् के पास जाकर पूछा, "भगवान्, संसार में सबसे महान् कौन है ?"

भगवान् ने कहा, "नारदजी, सबसे महान् तो यह धरती लगती है, परंतु यह धरती चारों ओर से पानी से घिरी हुई है, इसलिए समुद्र महान् है। परंतु अगस्त्य ऋषि समुद्र को भी पी गये थे, इसलिए अगस्त ऋषि महान् हैं। परन्तु अगस्त ऋषि भी तो आकाश में एक तारे की तरह ही रहते हैं, इसलिए आकाश महान् है। परंतु विष्णु भगवान् ने आकाश को तो वामन-अवतार में एक ही कदम में नाप लिया था, इसलिए विष्णु भगवान् महान् हैं। परंतु हे नारदजी। भक्त अपने छोटे-से हृदय में भगवान् को हमेशा भर लेता है, इसलिए 'भक्त' ही इस संसार में महान् है !

प्रांतों का पुनर्निर्माण और नवयुवक

(विनोबा)

१ नवंबर से हिंदुस्तान में नयी राज्यरचना हो रही है। इस विषय पर बहुत लोगों ने ध्यान दिया, जवानों का भी उसमें विश्वास रहा। आखिर एक फैसला किया गया। देश के विषय में जवानों में जाग्रत भावना रहती है, यह अच्छा लक्षण है, परंतु किस चीज की वास्तव में कितना महत्त्व है, इसका हमें भान होना चाहिए। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद नयी प्रांत-रचना बनना बहुत जरूरी था। लेकिन वह एक छोटी-सी चीज थी। जो प्रांत बने थे, वे कोई विचारपूर्वक तो नहीं बने थे। अंग्रेजों के हाथ में एक-एक विभाग आता गया और वे प्रांत बनाते गये। लोगों की भाषा में लोगों की राज्य-व्यवस्था चले, तालीम मिले, न्याय प्राप्त हो, इस दृष्टि से राज्य की नयी रचना बनाने का सोचा गया जो ठीक ही था, परंतु उसके बारे में तरुणों ने बहुत ज्यादा दिलचस्पी दिखायी, यहाँ तक कि उनकी मनोवृत्ति हिंसात्मक तक बन गयी ! अर्थात् यह ठीक नहीं हुआ।

हिंदुस्तान के इतिहास का बड़ा वैभव यह है कि यहाँ विविध भाषाओं का एक ही देश माना गया। हजार-डेढ़ हजार साल पुरानी ये भाषाएँ हैं, लेकिन कन्या-कुमारी से कश्मीर तक हमारा भारत एक ही देश है, ऐसा सत्पुरुषों ने, ऋषियों ने सिखाया और हमने भी माना और कैलाश से रामेश्वर तक असंख्य भाषाएँ चलती रहीं। इस तरह भारत की एकता बहुत प्राचीन काल से आज तक मानी गयी।

> दुनिया में से जब भय नेस्तनाबूद हो जायगा, तभी हम संपूर्ण शांतता प्राप्त कर सकेंगे।
>
> इस अणुयुग में भौतिक और आध्यात्मिक विकास का संतुलन लुप्त हुए जा रहा है, जब कि इसी संतुलन की आवश्यकता है, क्योंकि स्थायी शांति उसीसे आश्वस्त हो सकती है।
>
> कलकत्ता-दिल्ली —डॉ. माजा,
> ७–११ अक्टूबर (यूनो-अध्यक्ष)

फिर भी यहाँ राज्य एक नहीं था। भिन्न-भिन्न राजा राज्य करते थे। प्रजा की कोई आवाज नहीं थी। उन राजाओं में आपस-आपस में लड़ाइयाँ चलती थीं। अतः भारत की एकता इन राजाओं ने नहीं बनायी; भारत की एकता बनायी, ऋषियों ने। कहा गया है : "दुर्लभम् भारते जन्मम्।" हिंदुस्तान का भाग्य है कि ऋषियों की एकता की जो कल्पना थी, वह राजनीति में भी आ गयी और कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही राज्य-व्यवस्था भी बन गयी।

भारत की विशेषता

हमें जब अपना देश बनाने का मौका मिला है, तो प्रांत बनाने में ही यह एकता हमें क्यों खो देनी चाहिए ? क्या व्यवस्था की और नियमों की सहूलियत के लिए ही अलग-अलग प्रांत नहीं बन रहे हैं ? उसमें फिर एकाध तालुका इधर से उधर जायेगा या उधर से इधर आयेगा, चार-पाँच गाँव इधर से उधर जायेंगे, या उधर से इधर। परंतु वे सारे हिंदुस्तान में ही रहेंगे, हिंदुस्तान के बाहर तो नहीं जायेंगे ? इन सब भाषाओं का गौरव दुनिया में अच्छी तरह होगा। हम भी बहुत सारी भाषाएँ सीखे हैं। हर भाषा में क्या-क्या मिठास है, क्या रस है, यह हमें मालूम है और हम जिस-जिस प्रांत में गये, हर जगह हमने खूब ही प्रेम पाया है। पर यूरोप में यह अनुभव नहीं आवेगा। फ्रांस का कोई भी मनुष्य रूस में जाकर ऐसे व्याख्यान नहीं देगा या जर्मनी में जाकर वहाँ की जमीन की समस्या हल करने के लिए नहीं कहेगा या ऐसा काम नहीं करेगा। यह हिंदुस्तान का ही भाग्य है कि उत्तर का मनुष्य दक्षिण में आता है और बात करता है, तो लोग प्रेम से सुनते हैं। यह जो हमारा बड़ा भाग्य है, वह खोना नहीं चाहिए। यह देश जितना बड़ा है, उतना ही यहाँ के लोगों का दिल बड़ा था और यह बड़ा दिल तब बना था, जब इधर से उधर जाने की कोई सहूलियत, कोई साधन नहीं था ! आज, जब कि ये सब साधन हाथ में आ गये हैं, तो क्या अब छोटा दिल बनाओगे ? जब साधन नहीं थे, तब बड़ा दिल बनाया था, तो इन साधनों के रहते तो उससे भी बहुत बड़ा दिल बनाना चाहिए, हमारी दृष्टि सारे विश्व तक पहुँचनी चाहिए; भारत से कम तो होनी ही नहीं चाहिए।

इस प्रांत-रचना में जवानों ने जिस उत्साह से भाग लिया, उसमें उन्होंने यह बात ध्यान में नहीं ली। वे भूल गये कि हमारा बड़ा देश है। वे भूल गये कि हमारे देश की एक विशेषता है, जो यूरोप में नहीं है। वे यह भी भूल गये कि यूरोप का फेडरेशन अभी बना नहीं है, जो हिंदुस्तान में कब का बन चुका है। वहाँ छोटे-छोटे देश एक-दूसरे से झगड़ते हैं, लड़ते हैं। स्विट्जरलैंड कितना बड़ा है ? हॉलैंड, डेन्मार्क कितने बड़े हैं ? उनकी भाषा भी परस्पर के इतनी नजदीक है, जैसे मलयालम और तमिळ। पंद्रह दिन में जर्मन का मनुष्य फ्रेंच सीख सकता है और लिपि तो सबकी एक ही है। यहाँ तमिळ मनुष्य को मलयालम सीखनी हो, तो दूसरी लिपि लिखनी पड़ती है। इस तरह अपने यहाँ विविध भाषाएँ हैं, अनेक धर्म हैं, पर सारे यूरोप में एक ही धर्म है—ईसाई। फिर भी एक-दूसरे से वहाँ नहीं बनता है, अलग-अलग छोटे-छोटे राष्ट्र बनाये गये हैं और वे एक-दूसरे से झगड़ते हैं। दो-दो, तीन-तीन पक्षों में वे बँटे हैं। इससे तो हिंदुस्तान बहुत ही आगे बढ़ा हुआ है। ऐतिहासिक काल में ही हमने भारत की एकता स्थापित की है। अब हमें सारे देश को आज़ाद-पसंद, स्वातंत्र्य-प्रिय बनाना है। ऐसा देश बनाना है, जिसके जरिये हिंदुस्तान में शांति हो। इतना ऊँचा हमारा ध्येय होना चाहिए।

> हममें से स्पर्धा का आवेश लुप्त हो, "पहले मैं" और "दूसरों पर मैं हावी बनूँ," ये आकांक्षाएँ एवं इनके लिए होने वाले प्रयत्न समाप्त हों तथा इनके बदले सब संवादी जीवन जीयें। हर तरह की संकुचितता, स्वार्थ आदि दूर करके मानव-ऐक्य-चेतना के प्रति हम जागरुक रहें।
>
> शांति और संवादमयता को सिद्ध करने की यही एक राह है।
>
> मई, १९५५ —श्री माताजी

गरीबों को लाभ कैसे पहुँचेगा ?

भाषानुसार प्रांत-रचना में जो हिंसात्मक कार्य हुआ, वह बिल्कुल गलत काम हुआ। आज भी ये लोग सत्याग्रह कर रहे हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें सत्य क्या है ? हाँ, आग्रह है यह ठीक बात है ! पर एक बात समझनी चाहिए कि हमें दिल बड़ा बनाना चाहिए।

एक-एक भाषा का एक-एक राज्य (प्रांत) बनेगा, तो भाषा की उन्नति के लिए लाभ होगा, व्यवहार अपनी भाषा में होगा, तो उससे भी लाभ होगा, पर क्या इससे गरीबों को लाभ होगा ? उनका काम बनेगा ? अगर

www.vinoba.in

एक-एक राज्य के ऊँचे और बड़े लोगों ने गरीबों को चूसने का काम किया, तो भाषानुसारी प्रांतों से उन्हें क्या लाभ होगा ? क्या तमिलनाड के गरीबों को खुशी होगी कि हमें अब तमिलनाड के ही बड़े लोग चूस रहे हैं, बाहर के नहीं ? क्या बकरे को खुशी होगी कि अपने ही देश में बनी हुई छुरी से उसका गला काटा जा रहा है ? क्या आप उसे यह कहेंगे, "अरे ! यह छुरी शेफील्ड की बनी नहीं है, अपने ही देश की, तमिलनाड की है ! क्यों चिल्लाते हो रे ?" इस तरह अपनी ही भाषा के लोग हमको ही तकलीफ देते हैं, तो इससे क्या गरीबों को आनंद होगा ?

नवजवानों को जरा इधर भी ध्यान देना चाहिए। अपने यहाँ की गरीबों की हालत क्या है, दारिद्र्य कितना है, दुःख मिटाना है, यह सारा करना है। एक दफा स्वराज्य-प्राप्ति होने के बाद राजनैतिक काम की योग्यता कम हो जाती है और आर्थिक और सामाजिक काम की योग्यता बढ़ती है। आज जो उठा, सो राजनैतिक काम में जाता है। हम यह बिलकुल बुद्धिहीनता समझते हैं। जब हमारा देश गुलाम था, तब यह ठीक था। एक दफा भारत मुक्त होने के बाद हमारा ध्यान सामाजिक और आर्थिक उत्थान में जाना चाहिए।

नवजवानों को आवाहन

जहाँ त्याग होता है, वहाँ ताकत होती है। जब देश गुलाम था, तब राजनीति में भाग लेने वाले को त्याग करना पड़ता था, जेल में जाना पड़ता था, जुर्माना भरना पड़ता था, फाँसी जाने का भी डर था। उस वक्त राजनीति में भाग लेना याने त्याग करना था। इस वास्ते शक्ति का अधिष्ठान हमेशा त्याग होता है। 'त्यागात् बलम्' याने त्याग में; 'तपसा बलम्' याने तप में बल है। उसीसे क्रांति होती है। क्रांति करनी है, तो त्याग भी करना चाहिए, तपस्या भी चाहिए। इस वास्ते ताकत आनी चाहिए। आज हम काँग्रेस के सदस्य बनते हैं, तो हमें जेल में जाने का या अन्य कोई डर नहीं है। उलटे लाइसेंस मिलना संभव रहता है। आज काँग्रेस राज्य-संस्था बनी है। चुनाव में जाने में क्या त्याग करना पड़ता है ? कुछ पद-प्राप्ति होती है, प्रतिष्ठा होती है। ऐसी हालत में जहाँ त्याग नहीं, वहाँ ताकत नहीं आती है; बल्कि वहाँ शक्ति का क्षय शुरू हो जाता है। जहाँ आप अधिकार में जाते हैं, जहाँ कि भोग है, पद है, वहाँ शक्ति का क्षय होता है। यह ठीक है कि देश का राज चलाना है, तो चंद लोगों को वहाँ जाना ही पड़ता है। परंतु वहाँ पुरुषार्थ नहीं है। देश को बनाना है, तो जवानों को राजनीति में नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक क्रांति में ध्यान देना चाहिए। उससे उनको बल मिलेगा। आज भूदान में शक्ति है, राजनीति में शक्ति नहीं है, क्योंकि भूदान में त्याग है, जमीन देनी पड़ती है, संपत्ति देनी पड़ती है। जहाँ त्याग आता है, वहाँ शक्ति आती है। जो शांति चाहते हैं, भारत को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, उन्हें त्याग के काम में हिस्सा लेना चाहिए। जिसमें गरीबों का उत्थान हो, देश का और समाज का उत्थान हो, ऐसे कामों में जवानों को हिस्सा लेना चाहिए।

हमने अभी कहा था कि प्रांत-रचना हुई, तब जवानों में जागृति देखी। जागृति अच्छी है, परंतु जाग कर भी जिस दिशा में जाना चाहिए, उस दिशा में कोई न जाता हो, तो क्या कहे ? हमें उचित दिशा ही लेनी चाहिए। हम चाहते हैं कि जो जागृति नवजवानों ने प्रांत-रचना में दिखायी, वही जागृति वे गरीबों के उत्थान में और भूदान में भी दिखाये।

(पल्लडम्, कोइंबतूर, १०-१०-'५६)

शान्तिवादियों से--

(आचार्य श्री तुलसी)

एक ओर मनुष्य क्रूर बन रहा है, दूसरी ओर शान्ति की पुकार है। कहना चाहिए कि यह युग क्रूरता और कोमलता की स्पर्धा का युग है। दुनिया एक दिन में होमी जा सकती है, अमुक राष्ट्र इतने घंटों में स्वाहा किया जा सकता है—विज्ञान-परिषद् के मुखियों और युद्ध-समिति के नेताओं की ये भविष्यवाणियाँ मनुष्य-समाज को संदिग्ध किये हुए हैं। जो थोड़ा-सा चिन्तनशील है, उसके सामने प्रलय का चित्र खिंच रहा है। तीसरे महायुद्ध की कल्पना मनुष्य को झकझोर देती है। सद्बुद्धि जागे, तीसरा महासमर न हो, किन्तु यदि वह छिड़ गया, प्रलयकारी अस्त्रों के मुँह खुल पड़े, तो क्या होगा ? मानव-सभ्यता चूर-चूर हो जायगी। क्या मानव-जाति भी बचेगी, यह प्रश्न है और यदि वह बच भी गयी तो दीन-हीन और अपंग ही वह होगी, यह निश्चित है। कुछ ही अधिकार-लोलुप व्यक्ति समूचे संसार को खतरे में डाल देते हैं। वे प्राणी-जाति के दुश्मन हैं। वे दूसरों को मिटाना जानते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि दूसरों को मिटा देने पर उनका क्या होगा।

एक राष्ट्र दूसरे को मिटा कर स्वस्थ रह सके, यह सम्भव ही नहीं। जरूरत है कि राष्ट्रों का नेता-वर्ग इस तथ्य को ठंडे दिल और दिमाग से सोचे। मानव-समाज को मिटा कर भौतिक स्वार्थ भी नहीं साधा जा सकता—यह सत्य आँखों से ओझल नहीं होना चाहिए। अहिंसा का राज-पथ है—दूसरों के अधिकार हड़प करने की वृत्ति न जागे। मनुष्य अपने अधिकारों से बाहर न आये, तब शान्ति की पुकार सफल हो सकती है, यह तत्त्व शान्ति के समर्थकों को अधिक समझना है। दूसरों के अधिकार-हरण के पर्दे पर जो शान्ति का अभिनय किया जाता है, उसका परिणाम शान्ति नहीं होता। कोई किसी पर अपनी सत्ता, अपने विचार, अपनी प्रणाली न थोपे—शान्ति की दिशा में यह एक बहुत बड़ा कदम होगा। मुझे विश्वास है कि शान्तिवादी इस दिशा में स्वयं आगे बढ़ेंगे। हिंसा और सत्ता में विश्वास रखने वालों को वे यदि यह तत्त्व समझाने में सफल हुए, तो उनकी यह सफलता प्राणी-जाति के लिए महान् वरदान होगी।

शान्ति-सम्मेलन की भूमि हिंसा के क्रूर अभिशापों की भूमि रह चुकी है—शत्रु-राष्ट्रों में सन्धि हो चुकी है, परन्तु भूमि की पूर्व-स्थिति से अब भी सन्धि नहीं हुई है। यह एक शिक्षा है, जो शान्ति-पथ को प्रशस्त करती है।

गम्भीर दर्शन की अपेक्षा

(आचार्य श्री तुलसी)

एशिया ने जो करवट ली है, उससे विश्व का घटना-चक्र प्रभावित हुआ है। जागरण की नव-वेला में जो कठिनाइयाँ आती हैं, वे विनाश के लिए नहीं, विकास के लिए आती हैं। उत्पीड़न और शोषण की यातनाएँ भुगत कर जो मुक्त हुआ है, उसे अनुभव है कि ये कितने बुरे होते हैं। पर अधिकार-हरण के आधार पर जिनका जीवन विलासी बनता है, वे इनकी बुराई को नहीं समझ सकते। एशिया के राष्ट्रों ने इस अनुभव से लाभ उठाया तो उनमें साम्राज्यवादी मनोवृत्ति नहीं जगेगी। साम्राज्यवाद की भावना से बचने का अर्थ है, अनाक्रमण, अनाक्रमण का अर्थ है अहिंसा। अहिंसा का अर्थ है शान्ति।

शान्ति के क्षेत्र में भेद हो सकता है, पर टक्कर नहीं। विरोध को मिटाने का प्रयत्न हो सकता है, पर विरोधी को मिटाने की बात नहीं होती। इसलिए वहाँ सह-अस्तित्व सम्भव होता है। आज जो सह-अस्तित्व की चर्चा चल रही है, वह इससे अधिक अपेक्षित है और इसलिए है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को निगल जाने के लिए तुले हुए हैं। वे विरोध को नहीं मिटा सकने की स्थिति में विरोधी को मिटा देने के सिद्धान्त को अपना चुके हैं, किन्तु यह एक खतरनाक कदम है। इससे समूचे संसार पर भय छा रहा है। कब क्या हो जाय, कब कौन क्या कर बैठे, ऐसी आशंकाओं से मानवीय शक्ति का अपव्यय हो रहा है। विश्व-शान्ति के लिए सब राष्ट्रों से यह अपेक्षा है कि वे स्वयं अभय बनें और दूसरों को भी अभय बनायें। यह कार्य उनके हित में होगा, दूसरों के और समूची मानव-जाति के हित में होगा।

अभय का वातावरण पैदा करने के लिए मैं चाहूँगा कि प्रत्येक व्यक्ति अणुव्रती बने। व्रत-ग्रहण के लिए हृदय-शुद्धि चाहिए ! व्रतग्रहण से हृदय-शुद्धि परिपक्व होती है। हृदय-शुद्धि होने पर समस्याओं का समाधान स्वयं हो जाता है। भौगोलिक सीमाओं के कारण रंग और जाति का भेद होता है। प्रादेशिक सीमाओं के कारण भाषा और वेष-भूषा का भेद होता है। व्यक्तित्व की सीमाओं के कारण भावना और भावाभिव्यक्ति का भेद होता है। किन्तु यह होने पर भी मानवता में भेद नहीं है। मानवता—जो मौलिक है; तथ्य है—उसकी उपेक्षा होती है और बाहरी भेद, जो काल्पनिक हैं या मौलिक नहीं हैं, उनको महत्त्व दिया जाता है—यही समस्या है। सब मेरे जैसे हों, मेरी तरह सोचें, मैं करूँ वैसे ही करें, मेरी तरह ही बोलें, चलें, खायें-पीयें, बैठें-उठें—यह अपना अनुकरण कराने या दूसरों के अधिकार-हरण की वृत्ति का बीज बड़ा सूक्ष्म है। उसे गहराई से देखने की आवश्यकता है। ऐसा हुए बिना वह विकास या शान्ति के प्रयत्नों को सफल नहीं होने देगा।

मैं आज, गांधी-पखवारे के अंतिम दिन पर, प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक भारत की भूमि-समस्या हल नहीं होगी, तब तक मैं अपने बरहज-आश्रम (देवरिया) में नहीं लौटूंगा !

पदयात्रा, मुरसान (हाथरस) —बाबा राघवदास

('हिंदुस्तान' से, ता० २२-१०-'५६)

---

www.vinoba.in

विल्फ्रेड वेलॉक का पत्र और मशीनें

(बाळासाहब खेर)

इधर कुछ लोगों ने भारत में कृषि-विकास के सिलसिले में यांत्रिक साधनों के बजाय प्राचीन देशी साधनों के अपनाने में अधिक दिलचस्पी लेनी शुरू की है। श्री जाबिर अली ने इस संबंध में जो सूचनाएँ दीं, उसके प्रसंग में श्री विल्फ्रेड वेलॉक का एक लंबा पत्र हमें मिला है, जिसकी कुछ बातें हम नीचे दे रहे हैं।

जाबिर अली के गहरी जुताई संबंधी मत के संबंध में श्री वेलॉक ने लिखा है : "इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद मेरा यह कहना है कि यांत्रिक कृषि से विशेष लाभ की आशा करना ठीक नहीं। ऐसे देखा गया है कि किसान खेती करने के लिए मशीनें ज्यादा खरीद रहे हैं। शुरू में तो महज यह पुराने और नये साधनों के बीच चुनाव करने तक की ही बात रही। मगर अब तो मेहनत बचाने के लिए ही यंत्र खरीदे जाने लग गये हैं। साथ ही, अब तो मजदूरों की कमी का सवाल भी उठता जा रहा है। इस वक्त तो हालत यह है कि खेती में भी मशीनों का बोलबाला हो चला है। यह भी जान लेना चाहिए कि किसान ये सारी बड़ी-बड़ी मशीनें उधार ही लेते हैं और उसका नतीजा यह होता है कि वे कर्ज में बहुत ज्यादा डूबे रहते हैं।

"यह भी कहा जा सकता है कि बहुत से किसानों के मन में इस बात का शक है कि भारी मशीनें हर किस्म की जमीन में इस्तेमाल नहीं की जा सकतीं। इसकी वजह यह है कि कहीं-कहीं जमीन इस कदर दब जाती है कि वहाँ वह बैठ जाती है और कहीं-कहीं ऐसी पोली हो जाती है कि बाद में वहाँ पानी इकट्ठा होने लगता है। यह हालत अवश्य ही फसल के बढ़ाव के लिए बहुत ही बुरी है। यही वजह है कि ऐसी जगहों पर बहुत से किसानों ने ट्रैक्टरों या बड़ी-बड़ी मशीनों के बजाय खेत जोतने के काम में घोड़ों का इस्तेमाल करना ज्यादा मुनासिब समझा है। इंगलैण्ड में गहरी खुदाई आठ से दस या बारह इंच तक की हो सकती है। गहरी जुताई के संबंध में आम तौर से दो बातें कहीं जाती हैं : पहली यह है कि इससे जमीन तर व ताजा हो जाती है। दूसरी यह कि इससे नीचे की जमीन ऊपर आ जाती है, जो ज्यादा उपजाऊ होती है।

"इसके बावजूद इस मुल्क में कुछ ऐसे भी किसान हैं, जिन्होंने गहरी जुताई का यह तरीका छोड़ दिया है और अब वह घोड़ों की मदद से छिछली जुताई का ही तरीका अपनाते जा रहे हैं। बहुत दिन की बात नहीं है, ४० साल पहले तक हमारे मुल्क में तमाम काश्त घोड़ों से खींचे जाने वाले हलों से होती थी, जिनकी जुताई निश्चय ही छिछली होती है। इन ४० वर्षों के भीतर ही हमने देखा कि रासायनिक खादों ने पत्तियाँ, गोबर, मल आदि चीजों से बनने वाली खादों को धक्का देकर पीछे हटा दिया और किसान ने भी उसे गले लगाया। मगर इसका नतीजा क्या हुआ ? इंसान, जानवर और पेड़-पौधे कई तरह के रोगों के शिकार हो गये।

"आज ब्रिटेन में ऐसे बहुत से लोग हैं, जो खेती या बागवानी के सिलसिले में रासायनिक खादों का कतई इस्तेमाल नहीं करते। मैं भी ऐसे ही लोगों में हूँ। मैं अपने ही बगीचे में खाने के बहुत सारे समान पैदा कर लेता हूँ और मैं हमेशा प्राकृतिक खाद इस्तेमाल करता हूँ। हमारा यही तजुर्बा है कि खाद के लिए हम जो कंपोस्ट तैयार करते हैं, उससे बहुत बड़ी मात्रा में कीड़े-मकोड़ों का जन्म होता है, जिनकी वजह से हमें तीन बातें आसानी से मिलती हैं—पहली यह कि इन कीड़े-मकोड़ों के चलने से जमीन तरोताजा और हल्की हो जाती है। दूसरी यह कि ये कीड़े-मकोड़े इस कुदरती खाद को जमीन के अन्दर तक ले जाते हैं, जिससे पौधों की जड़ों को अच्छी खुराक मिलती है। तीसरी यह कि इससे पौधे जड़ से जमीन तक नम बने रहते हैं और नीचे से खुराक अगर कुछ कम भी पड़ जाय, तो उन पर ज्यादा असर नहीं होता। यह भी जान लेना बहुत जरूरी है कि पौधों को कंपोस्ट से जितनी खुराक और ताकत मिलती है और इससे जो ताज़गी मिलती है, वह रासायनिक खादों में उन्हें कभी नहीं मिल सकती। साथ ही सब पौधे रोगों से लड़ने की ताकत भी बहुत ज्यादा रखते हैं। चुनांचे मैं अपने बगीचे में जो खेती करता हूँ, उसमें इस बात का बराबर ख्याल करता हूँ कि जुताई ज्यादा गहरी न होने पाये। छिछली जुताई कर लेने के बाद पौधों के लिए खुराक वगैरह का सारा काम मैं कीड़ों के जिम्मे छोड़ देता हूँ और इसीसे मेरी फसल साल-ब-साल अच्छी होती जाती है।"

यंत्रों का परिणाम

श्री वेलॉक की ऊपर लिखी बातें विचारणीय हैं और मैं ख्याल करता हूँ कि हमारे देश के लोग इस पर भलीभाँति गौर करेंगे। श्री जाबिर अली से मैंने श्री वेलॉक के इस खत की चर्चा की, तब उन्होंने यह कहा कि यह बात तो जरूर सही है कि भारत के १० करोड़ खेती पर गुजर करने वाले लोगों को साल में छः महीने से ज्यादा का काम नहीं मिल पाता और यह काम के छः महीने भी एकसाथ काम करने के नहीं होते। मुश्किल यह है कि इस बीच वे न तो कारखानों में काम कर सकते हैं और न इस तरह का ही कोई धंधा अपना सकते हैं। ऐसे हालत में यही हो सकता है कि ग्राम-उद्योगों को बढ़ाया जाय और उन्हें इस काबिल बनाया जाय कि वह उनकी आमदनी बढ़ाने के साधन बन सकें। वैसे तो ग्राम-उद्योग-मंडल इस मामले पर गौर कर ही रहा है, मगर इधर ट्रैक्टरों और लारी वगैरह के ज्यादा हो जाने से किसानों के पास घास काटने, ढोर चराने और रखने, पशुपालन और बैलगाड़ी आदि के जरिये आमदनी के जो साधन हैं, वे खत्म होते जा रहे हैं। कुल मिला कर हम यह कह सकते हैं कि खेती या खेती से लगे धंधों में मशीनों के ज्यादा इस्तमाल से किसानों की हालत और भी बुरी होती जा रही है। यह कैसी अजीब-सी बात है कि बड़े-बड़े कारखानेवालों और व्यापारियों के झुठे प्रचारों में फंस कर हमारी सरकार वह हालत पैदा करती जा रही है, जब कि हम इन १० करोड़ भाइयों के लिए कोई धंधा न जुटा पावेंगे !

ऐसे बहुत सारे लोग हैं, जो मशीनों के ज्यादा इस्तेमाल की सलाह इस आधार पर देते हैं कि इससे काम के घंटे कम हो सकेंगे। मगर मैं पूछता हूँ कि क्या एक घंटे की शिफ्ट के लिए वे राजी होंगे ? इससे समाज और उद्योग में वह अजीब-सी हालत पैदा हो जायगी, जिसका कोई ठिकाना नहीं। ये बेकार अपने इस फालतू वक्त में ऐसे-ऐसे कामों में लग जायेंगे, जिसके लिए हम यही कह सकते हैं कि मुल्क में अनियंत्रित अराजक समाज उत्पन्न हो जायेगा, जिसकी मिसाल शायद शैतान से ही दी जा सके। इसलिए मेरा तो यही ख्याल है कि किसानों के लिए पुराने तरीके का धंधा जारी रखा जाय। समस्या का यही समाधान है। कृषि-विकास के संबंध में जो भी सोचा या किया जाय, उस पर इन बातों के विषय में विचार करना बहुत ही जरूरी है।

(अंग्रेज़ी से)

ग्रामदानी गाँवों की निर्माण-प्रगति : उड़ीसा

(अ. वा. सहस्रबुद्धे, मंत्री, अ. भा. सर्व-सेवा-संघ)

कोरापुट में मिले समस्त ग्रामों को चार वर्गों में विभक्त कर दिया गया है। प्रत्येक खण्ड में २०० ग्राम हैं। ८ केन्द्र विकास-कार्यों को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से खोले गये हैं। एक केन्द्र के अन्तर्गत २० से लेकर २५ तक ग्राम, पाँच मील के अर्धव्यास में आते हैं। करीब ५० केन्द्रों में २०० कार्यकर्ता नियुक्त किये गये हैं। इन कार्यकर्ताओं में चालीस आदिवासी, पैंतालीस महिलाएँ तथा एक सौ दस नवयुवक हैं। मलेरिया आदि से उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियों तक ये कार्यकर्ता ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था तथा ग्राम-निवासियों के सुख-दुख के सहभागी बन गये हैं। इन ग्रामों में सहकारी भाण्डारों की स्थापना की जा चुकी है। ८०० गाँवों में से ४७२ गाँवों में गाँव की जमीन का वितरण संपन्न हो चुका है। विकास-कार्यों को आगे बढ़ाने का मार्ग भी प्रशस्त बन गया है। १००१ बैलजोड़ियाँ, जिनकी कीमत १ लाख २६ हज़ार रु. है, १५९५ परिवारों में वितरण की गयी हैं, अप्रैल के मध्य में कृषि-विशेषज्ञों की एक समिति भी गठित की गयी। जून मास के प्रारंभ में एक कारखाने की स्थापना रायगढ़ में की गयी है, जो कि प्रतिमास पाँच सौ चरखों का उत्पादन करेगा। साबुन, तेल और धान साफ करने के उद्योगधन्धे भी सन्तोषजनक प्रगति कर रहे हैं। गत मास से एक रसायनिक प्रौद्योग के स्नातक को भी लघु एवं कुटीर उद्योग की देखरेख का भार सौंपा गया है। अगस्त की २० ता. से 'फील्ड वर्क' के लिए प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गयी है। वास्तुकला में भी प्रशिक्षण के लिए ११ सितम्बर से वास्तुकला-प्रशिक्षा केन्द्र चालू हो गया है। तीन डाक्टरों की मदद से अब तक पाँच हज़ार रोगियों को रोग-मुक्त किया जा चुका है। ४७२ गाँवों की कुल ७६,५१८,६९ एकड़ भूमि में से ५३७८७८९ एकड़ भूमि का लोगों में वितरण किया जा चुका है। १७३१ एकड़ कम्युनिटी कृषि-कार्य के लिए छोड़ रखा है तथा अवशिष्ट २१००० एकड़ कृषियोग्य पड़ती के रूप में छोड़ रखा गया है। अर्थात् कुल भूमि का २ प्रतिशत ही सामुदायिक भूमि (कम्युनिटी लैंड) के रूप रखा गया है, पर कालान्तर में यह बढ़कर ३० प्रतिशत हो जायगा। कोरापुट (उड़ीसा) में ११४८ ग्रामदान अब तक प्राप्त हुए हैं।

('ग्रामदान' अंग्रेजी बुलेटिन से)

---

www.vinoba.in

पंचामृत

[विनोबा ने कहा–"हम विश्वमानव हैं।" किसी देशविशेष के अभिमानी नहीं। किसी धर्मविशेष के आग्रही नहीं। किसी सम्प्रदाय या जातिविशेष के बन्दी नहीं। विश्व के सद्विचार-उद्यान में विहार करना हमारा स्वाध्याय होगा, सद्विचारों को आत्मसात् करना हमारा अभ्यास होगा और विरोधों का निराकरण करना हमारा स्वधर्म होगा। विशेषताओं में सामंजस्य करके विश्व-वृत्ति का विकास करना हमारी वैचारिक साधना होगी।

इस दृष्टि से विहार करते हुए सर्वोदय के लिए जो पूरक एवं पोषक सुविचार हमारे दृष्टिपथ मे आये, उनसे बना हुआ या 'पंचामृत' "भूदान-यज्ञ" के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। —विमला]

विरोध से अविरोध की ओर

वर्तमान समय में साम्यबोध अत्यन्त आवश्यक है। वैषम्य जगत् का स्वभाव है, किंतु उसके हृदय में साम्य प्रतिष्ठित रहता है। बहु में एक, विभक्त में अविभक्त तथा भेद में अभेद का साक्षात्कार होना चाहिए, इसीके लिए ज्ञानी का सम्पूर्ण प्रयत्न है। साथ ही साथ इस प्रयत्न के फलस्वरूप एक में बहु, अविभक्त में विभक्त तथा अभेद में ही भेद दृष्टिगोचर होता है। ऐसी अवस्था में अवश्य ही भेदाभेद से अतीत वाक् और मनस् से अगोचर, निर्विकल्पक परम सत्य का दर्शन होता है। प्रति व्यक्ति के जीवन में जो सत्य है, जातीय जीवन में भी वही सत्य है। यही बात समग्र मानव के लिए भी सत्य है। विरोध से अविरोध की ओर गति ही सर्वत्र उद्देश्य रहना चाहिए।

("बौद्धधर्म-दर्शन" से) —— —गोपीनाथ कविराज

विश्वास एकतरफा ही होता है !

पीड़ित रुग्ण व्यक्ति जब आपरेशन के समय आँखें मूँद कर डाक्टर के हाथ में आत्मसमर्पण करता है, तब विश्वास एकतरफा ही होता है। पीड़ित के विश्वास के अनुरूप जमानत डॉक्टर से कोई नहीं तलब करता और तलब करने पर भी वह नहीं मिलती। चिकित्सक की अभिज्ञता, पारदर्शिता, उसकी साधु सत् इच्छा ही एकमात्र जमानत है और वह सम्पूर्ण रूप से उसीके अपने हाथ में है। वह दूसरे को दी नहीं जा सकती। रोगी को अपने ही कल्याण के लिए, अपने ही प्राण बचाने के लिए डॉक्टर का विश्वास करना होता है। इस पक्ष से भी इसका प्रत्युत्तर हो सकता है कि यह उदाहरण में ही चलता है, वास्तव में नहीं चलता।

बिना संकोच के आत्मसमर्पण करने की भी जमानत है, किंतु वह कहीं बड़ी है और उसे चिकित्सक के हृदय में बैठ कर स्वयं भगवान् लेते हैं। उनके लेने का दिन जब आता है, तब न चकमा चलता है, न बहस चलती है। इसीसे जान पड़ता है, सब छोड़ कर महात्माजी ने राजशक्ति के हृदय पर ही जोर दिया था। मारकाट, खून-खराबी, अस्त्र-शस्त्र अथवा बाहुबल की ओर ही वह नहीं गये, उनका सारा निवेदन-आवेदन, अभियोग-अनुयोग इसी आत्मा के निकट है। राजशक्ति में हृदय या आत्मा की कोई झंझट नहीं भी रह सकती है। किंतु इस शक्ति का संचालन जो करते हैं, उन लोगों ने भी छुटकारा नहीं पाया और सहानुभूति ही जब जीव के सब सुख-दुःख, सब ज्ञान, सब कर्मों का आधार है, तब इसीको जगाने के लिए महात्माजी ने प्राणपण किया था। आज स्वार्थ और अनाचार से यह सहानुभूति चाहे जितनी मलिन, चाहे जितनी ढँकी हुई क्यों न हो, एक दिन इसे वह निर्मल और मुक्त कर सकेंगे यह उनका अटल विश्वास क्षण भर के लिए भी ढीला नहीं हुआ। किंतु लोभ और मोह से स्वार्थ को, क्रोध और विद्वेष से हिंसा को निवृत्त या बंद नहीं किया जा सकता–इसीसे दुःख देकर नहीं–दुःख सह कर, वध करके नहीं, अकुंठित चित्त से अपनी बलि देने के लिए ही वह इस धर्मयुद्ध में उतरे थे। यही थी उनकी तपस्या, इसीको उन्होंने वीर का धर्म कह कर निष्कपट भाव से इसका प्रचार किया था। सारे पृथ्वी-मंडल में यह जो उद्धत अविचार की चक्की में मनुष्य दिन-रात पिस कर मर रहा है, इसका एकमात्र हल गोली-गोले, बंदूक, बारुद और तोप में नहीं है। है केवल मनुष्य की प्रीति में, इसकी आत्मा की उपलब्धि में—इस परम सत्य पर वे संपूर्ण हृदय से विश्वास रखते थे। इसीसे अहिंसा-व्रत को केवल क्षण भर का उपाय मान कर नहीं, चिरजीवन का एकमात्र धर्म समझ कर उन्होंने इस भारतीय आन्दोलन को राजनीतिक न कह कर आध्यात्मिक कह कर समझाने की चेष्टा में दिन पर दिन प्राणपण परिश्रम किया था। विपक्ष ने हँसी उड़ायी है, अपने पक्ष ने अविश्वास किया, पर दोनों में से कोई उन्हें विभ्रान्त नहीं कर सका। अंग्रेजों की राजशक्ति के प्रति महात्मा का जीवन-विश्वास जाता रहा, किंतु मनुष्य-अंग्रेजों की आत्मोपलब्धि के प्रति उनका विश्वास वैसे ही स्थिर और अटल बना रहा।

("श्री शरत् निबन्धावली" से) ——

लेनिनवाद और हृदय-परिवर्तन

(अपने विरोधियों को आतंकित करने के बजाय उनको अपने सिद्धान्त इस प्रकार समझाने चाहिए कि उनके मन में हमारे सिद्धान्तों के प्रति आस्था उत्पन्न हो, अर्थात् उनका हृदय जीतने की बात पर ही मुख्य रूप से ध्यान दिया जाय। यह बात आज से ३६ वर्ष पूर्व लेनिन ने सोवियत केन्द्रीय समिति के राजनीतिक मण्डल-विभाग को सुझायी थी, जब उसके अधीन काम करने वाले नियंत्रण-आयोग के कार्यों के सम्बन्ध में समस्या उठ खड़ी हुई। अमेरिका के परराष्ट्र-विभाग द्वारा प्राप्त और प्रचारित सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की २०वीं काँग्रेस के अवसर पर पार्टी के मुख्य सचिव श्री ख्रुश्चेव द्वारा किये गये भाषण से यह रहस्य प्रकट हुआ है। श्री ख्रुश्चेव ने अपने भाषण के प्रसंग में लेनिन के अब तक छिपाये गये उस पत्र की चर्चा की है, जो उन्होंने इस संबंध में राजनीतिक मंडल को लिखा था।)

लेनिन ने लिखा: "नियंत्रण-आयोग का एक विशेष कार्य यह है कि वह तथाकथित विरोधी पक्ष के प्रतिनिधियों से वैयक्तिक सम्पर्क स्थापन करने की चेष्टा करे तथा इस बात का भी प्रयत्न करे कि उन सदस्यों के मन में जो एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक पराजय-भावना उत्पन्न हो गयी है, उसका निवारण हो सके। इस बात की चेष्टा होनी चाहिए कि उनको सम्पूर्ण वस्तुस्थिति का भान ठीक उसी विधि से कराया जाय, जिस प्रकार हम अपने साथियों को कराते हैं और उनके लिए इस प्रकार के कार्यों की व्यवस्था की जाय, जो उनकी मनःस्थिति के सर्वथा अनुकूल प्रमाणित हो। उन पर कोई बात लादने जैसी न होनी चाहिए। इस संबंध के नियम और उचित परामर्श केन्द्रीय समिति के संघटन-मंडल द्वारा उपस्थित किये जा सकते हैं।"

हर कोई यह बात जानता है कि लेनिन मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक पहलू के विरुद्ध कुछ कहने या करने वालों के कितने प्रबल विरोधी थे। उनके साथ लेनिन की पटरी कभी नहीं बैठ सकती थी। इसके साथ ही वह उन लोगों के साथ भी किसी प्रकार के समझौते की प्रवृत्ति नहीं दिखा सकते थे, जो दल की निर्धारित नीति से विचलित हो जायँ। जैसा कि ऊपर दिये गये लेनिन के पत्र से स्पष्ट होता है, वे इस बात के इच्छुक थे और दल को सदा इस आशय के निर्देश दिया करते थे कि संशयी और दल की नीति से क्वचित् मतभेद रखने वालों के साथ गहरा संपर्क स्थापित करके अपने मत के अनुकूल बना लेने का प्रयत्न किया जाय। लेनिन का यह स्पष्ट मत था कि ऐसे व्यक्तियों को किसी प्रकार का दण्ड देने या उन पर किसी प्रकार का अत्याचार करने की अपेक्षा सर्वोत्तम मार्ग यही है कि उन्हें समझा-बुझा कर ठीक मार्ग पर लाया जाय।

सैनिकों के साथ जिस ढंग का व्यवहार और जिस प्रकार का कार्य लेनिन ने किया, उससे ही उनकी एतद्विषयक चातुरी और बुद्धिमत्ता का परिज्ञान हमें हो जाता है।

हमारा दल समाजवादी आधार पर लेनिन की योजनाएँ कार्यान्वित करने के उद्देश्य से संघर्ष में पड़ा था। यह सैद्धान्तिक संघर्ष था। यदि इस संघर्ष-काल में लेनिन के सिद्धान्तों के अनुसार काम हुआ होता, यदि दल के लोगों की निष्ठा जनहित के लिए उचित रूप से प्रयोग में लायी गयी होती, यदि विवेकपूर्वक उनका उपयोग किया गया होता, तो निश्चय ही हमारी क्रान्ति पंगु न बन गयी होती।

(अंग्रेजी से) ——

बहुमत की हुकूमत कैसे आयी ?

इस देश में पक्ष-पद्धति-पार्टी सिस्टम को करीब-करीब कोई नहीं समझता। ब्रिटेन के लोग उसका इतिहास तक नहीं जानते। वे समझते हैं कि उसकी जड़ें मनुष्य के स्वभाव में ही हैं और इसीलिए वह अविनाशी एवं नित्य है। जब मैं कहता हूँ कि वह हमारी म्युनिसिपल्टियों में नहीं है, तो वे समझते हैं कि मैं अज्ञानी हूँ या सनकी। वे मुझे विश्वास दिलाते हैं कि म्युनिसिपाल्टियों तथा कारपोरेशनों में-निगमों में-बिल्कुल पार्लमेण्ट की तरह ही स्थितिवादी-कंजर्वेटिव और प्रगतिवादी पक्ष मौजूद हैं और राजनैतिक मनुष्य-स्वभाव के अपरिवर्तनशील नियम के अनुसार वे हमेशा मौजूद रहेंगे!

www.vinoba.in

असल बात क्या है ? मैं उसे एक छोटे-से ऐतिहासिक नाट्य-संवाद के रूप में रखूँगा, क्योंकि मेरे लिए वह बहुत आसान है, साथ ही बहुत मनोरंजक भी।

[दृश्यः–अल्थाप, संडरलैण्ड के सरदार स्पेन्सर परिवार का निवासस्थान। उपस्थित : राजा तीसरा विलियम, उम्र ४५ वर्ष, जिसकी स्मृति बहुत उज्ज्वल, पवित्र और अमर है और उसके मेजबान रॉबर्ट स्पेन्सर, उम्र में प्रायः १० साल बड़े, राजनैतिक सूझ-बूझ और येनकेन प्रकारेण अपना उल्लू सीधा करने की चातुरी के लिए इनकी शोहरत दूसरे चार्ल्स और दूसरे जेम्स के दरबार में थी।]

विलियम—.....मैं अपने मोर्चों की पेशबंदी एक साल पहले भी नहीं कर पाता, क्योंकि यह कम्बख्त ब्रिटिश पार्लमेण्ट, जो कि इंगलैण्ड पर हुकूमत करने के लिए चुनी गयी है, वही चाहती है, जो हर अंग्रेज चाहता है–याने अपने ऊपर कोई शासन ही नहीं चाहती।.....

रॉबर्ट—.....मैं आपको एक ऐसी हिकमत बतला सकता हूँ, जिससे कि पार्लमेण्ट राज्य का खर्च मंजूर करने के अलावा तथा आगामी चुनावों को टाल सके, तब तक टालते रहने के अलावा और कुछ कर ही न सके।'''पार्लमेण्ट से पेश आने के लिए मेरे पास एक तरकीब है, हालाँकि उसे समझने के लायक तेज दिमागवाला राजा अब तक मैंने नहीं देखा।

विलियम—मुझे आजमा कर देखो।

रॉबर्ट—...आज आप अपने मंत्रियों को उनकी लियाकत और सिफत देख कर मुकर्रर करते हैं, उनकी पार्टी का ख्याल नहीं करते। यहाँ एक ह्विग को चुन लिया, वहाँ एक टोरी को। हर एक का अपना-अपना मुहकमा होता है, जिसे आप उसका केबिनट कहते हैं। इन सबकी सभा आपकी कौंसिल कहलाती है, इसे आपका केबिनेट कह सकते हैं।

विलियम—बिल्कुल ठीक। इसमें आप कौनसा नुक्स पाते हैं ?

रॉबर्ट—हुजूरे आला को मेरी सलाह है कि आइन्दा आप अपने मंत्री एक ही पार्टी में से चुनें और यह पार्टी हमेशा वही हो, जिसका कि हाऊस ऑफ़ कॉमंस में बहुमत हो।...

...हाँ, तो मैं वायदा करता हूँ कि जिस वक्त हुजूर इस तरकीब से काम लेना शुरू कर देंगे, उसी वक्त से हाउस ऑफ़ कॉमंस का एक भी सदस्य अपने सिद्धान्तों, अपनी निष्ठाओं, अपना विवेक, अपना धर्म या इसी तरह की अपनी किसी महँगी चीज के लिए कभी वोट नहीं करेगा। लोग यही समझते रहेंगे कि वह धार्मिक सहिष्णुता, युद्ध या शान्ति और यदि आपकी साली की संतानें मरती चली गयीं तो क्या इंगलैण्ड का मुकुट हैनोवर के मतदाता को मिलेगा ? सार्वजनिक जमीनों को अहाते लगाये जायँ या नहीं, फौजों के लिए मकानों का क्या इन्तजाम हो, खिड़कियों पर टैक्स लगे या नहीं, इसी तरह के सवाल पर मत दे रहा है, लेकिन असल में जिस सवाल पर वह हमेशा वोट देगा, वह सवाल होगा कि मेरी पार्टी की हुकूमत बनी रहेगी या नहीं और कहीं मुझे दूसरे चुनाव के लिए अपनी आधी जायदाद तो नहीं खर्च करनी होगी ? यह ख्याल भी उसे परेशान करता रहेगा कि यदि फिर से चुनाव हुआ और मेरे विरोधी उम्मीदवार के पास कहीं ज्यादा पैसा हुआ, तो मेरी जगह चली न जाय ?...

विलियम—तुम तो मेरे लिए जाल बिछा रहे हो। तुम तो कॉमंस सभा के बहुमत को असली राजा बनाना चाहते हो और असली राजा को महज कठपुतली। बहुमत तो तुम्हारी नाईं बातें बनाने में चतुर किसी भी महत्वाकांक्षी, युक्तिबाज़ आदमी के हाथ में अपनी नकेल दे देता है। ऐसा कोई भी शख्स मुझ पर इस तरह हुक्म चलायेगा, मानों वही राजा हो और मैं सिफर।

रॉबर्ट—...मैं आपको एक और भी वचन देता हूँ। अगर मेरी इस सलाह के मुताबिक कार्यवाही करें, तो बहादुर से बहादुर और काबिल से काबिल व्यक्ति से भी आपको कोई डर नहीं होगा, चाहे वह व्यक्ति स्वयं क्रामवेल या लिलबर्न–(सामंतवादी नेता)–ही क्यों न हों। उसे अपनी आधी उम्र और करीब-करीब सारी जायदाद पार्लियामेंण्ट में पहुँचने के लिए खर्च करनी पड़ेगी और जब वह बड़ी मुश्किल से पहुँच पायेगा, तो उसे आपके मंत्रिमण्डल में दाखिल होने की फिक्र के मारे और किसी बात के बारे में सोचने के लिए फ़ुरसत ही नहीं होगी। जब वह हिकमत से चोटी तक पहुँच जायगा, तो वह पार्टीबाजी के हथकण्डों का माहिर बन जानगा, और कुछ नहीं।

(अंग्रेजी से) —जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

बुलंद राष्ट्रधर्म

हमने आगामी पीढ़ियों के लिए विरासत कायम की है। उन्हें वह विरासत गौरव के साथ प्राप्त होनी चाहिए। इसकी जो बहुत थोड़ी कीमत हमें देनी पड़ेगी, उसके बदले में राज्यों का वैभव, ध्येय की भव्यता और राष्ट्रीय चारित्र्य की सम्पत्ति हमें मिलेगी। यह सौदा लाभकारी ही होगा।

परन्तु जिस विषय की तरफ विचारशील और विदारक बुद्धिवाले सभी व्यक्तियों का ध्यान बलात् आकर्षित होगा और जिसमें अन्य सारे गौण विषयों का समावेश हो जाता है और उसका हल आसान हो जाता है, वह है—हमारे राज्यों की एकता। इस पर हमारा महान् राष्ट्रीय चारित्र्य निर्भर है। इसीसे हमको संसार में गौरव मिलेगा और देश के भीतर सुरक्षा प्राप्त होगी।

इस विशाल राज्य का पृथक्-पृथक्-राज्यों में विभाजन हमारी अपनी सुविधा के लिए है। दूसरे देशों की दृष्टि से उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। हरेक राज्य का अपना-अपना कामकाज स्थानीय है। उस राज्य की सीमा से बाहर उसकी व्याप्ति नहीं है। उनमें से जो राज्य अधिक-से-अधिक वैभवशाली है, उससे होने वाली सारी-की-सारी आमदनी भी विदेशों से हमारी स्वाधीनता का संरक्षण करने के लिए काफी नहीं होगी। अर्थात् संयुक्त राज्य की सार्वभौम राष्ट्रीय सत्ता के सिवा हमारी दूसरी कोई राष्ट्रीय सत्ता नहीं हो सकती। ऐसी कोई दूसरी सार्वभौम राष्ट्रीय सत्ता हो भी, तो वह हमारे लिए घातक साबित होगी। उसका खर्च हमारी हैसियत के परे होगा और हम उसको निबाह नहीं सकेंगे। संयुक्त राज्य का हमारा नागरिकत्व ही हमारा चारित्र्य है। किसी भी विशिष्ट राज्य की हमारी नागरिकता हमारी स्थानीय विशेषता है। उस विशेषता से हम अपने घर में पहचाने जाते हैं, लेकिन सारा संसार तो हमें अमेरिकन नागरिक के नाते ही पहचानता है। हमारी सबसे गौरवपूर्ण उपाधि हमारा अमेरिकन नागरिकत्व ही है।

(अंग्रेजी से) —टॉमस पेन

साधनामय जीवन

साधक के जीवन में ऐसी प्रतीति नहीं रहना चाहिए कि अमुक समय तो साधना का है और अमुक समय साधना का नहीं है। अमुक क्रिया या प्रवृत्ति तो साधना है और अमुक नहीं। उसका तो प्रत्येक क्षण और प्रत्येक प्रवृत्ति साधनामय होनी चाहिए। जिसकी समझ में सब कुछ भगवान् का है, उसका अपना तो केवल मात्र एक भगवान् के सिवा और कुछ भी नहीं रहा। फिर उसकी कोई भी प्रवृत्ति भगवान् की सेवा से भिन्न हो ही कैसे सकती है ? उसके जीवन का प्रत्येक क्षण भगवान् की प्रसन्नता के लिए, उन्हींकी दी हुई योग्यता से, उन्हीं की सेवा में लगेगा।

('एक महात्मा का प्रसाद' से)

समिति-पद्धति का रहस्य

इस रोग का सबसे प्रधान लक्षण समिति-पद्धति का कार्यान्वय है। यह साधारण-सी बात है कि उच्च श्रेणी के प्रशासक कुछ ३०–३५ समितियों में अपने को बैठा लेते हैं और प्रायः अपना आधा समय इन्हींमें लगा देते हैं। इन समितियों की बैठकों में प्रायः कुछ भी नहीं हो सकता, अतः इनमें लगाया हुआ समय एक प्रकार से निरर्थक जाता है। यह बात जान लेनी चाहिए कि यदि इस प्रकार की किसी समिति से किसी प्रश्न पर निर्णय करने की बात कही जाती है, तो या तो सारा काम उस समिति का सचिव कर लेता है या फिर एक छोटी-सी कार्यसमिति से सुझाव देने को कहा जाता है। पूरी समिति वस्तुतः कोई काम नहीं करती। वह केवल बातों के चक्कर में फँस जाती है और इसी पर विचार करती रह जाती है कि उसके सचिव या कार्यसमिति ने क्या कहा या किया है। सच कहा जाय, तो यह समिति-पद्धति एक प्रकार से प्रशासकों की अंतिम विजय का चिह्न है। समय नष्ट करने वाली ऐसी किसी दूसरी विधि का अब तक न तो आविष्कार हुआ है और न कदाचित् हो ही सकता है, जो मनुष्य के विवेक को पूर्णतः ध्वस्त कर दे।

("ए डीकेड आफ डिसीशन" से) —फ्रेड हॉयल

सुख की हँसी

यथार्थ में जो कुछ किसीके पास है, वह सब भगवद्-प्रदत्त है। ईश्वर तो सबमें बैठ कर विविध प्रकार की लीलाएँ करते हैं। सबसे जीवन की भारी कला ईश्वरोन्मुख होकर बढ़ने में है। सबमें आत्मीयता का अनुभव कर स्नेह करने में है। सुखी हृदय ही सुख दे सकता है और दुःखी हृदय दुःख देता है। भगवान् का वरद-हस्त जिसने एक बार अनुभव किया है, वह भला क्यों न सुख की हँसी हँसेगा। हम हँसेंगे, तो लोगों को बाध्य होकर हमारे साथ हँसना होगा। हमारे जीवन का लक्ष्य मानव के ओठों पर मुस्कान देखना है।

(एक भाई के पत्र से)

---

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

२६ अक्टूबर सन् १९५६

मनुष्य के दो दुश्मन !

(विनोबा)

भूदान कै कार्य मैं त्याग और करुणा की बहुत जरूरत है। जनता कै लीअै त्याग करनै की तैयारी तथा लोकजीवन सुधारनै की अत्यंत तीव्र भावना चाहीअै और अैसी करुणा चाहीअै की जैसी माता की अपनै बच्चों कै लीअै होती है। बच्चों मैं कअी दोष हों, तो भी माता अुनकै तरफ दैखती नहीं, वह अुन बच्चों की सेवा करती ही रहती है। वह सेवा करती ही जाती है, क्योंकी अुसकै हृदय मैं करुणा है। परंतु अुसकी करुणा दो-चार बच्चों तक ही सीमीत रहती है, वह दुनीया कै लीअै नहीं होती है, क्योंकी अुसका हृदय छोटा-सा होता है। लेकीन जो भी छोटी-सी करुणा है, अुसीकै कारण वह कुछ त्याग कर सकती है और जीतना त्याग करती है, अुतना अुसै आनंद हासील होता है। मां कै जीवन मैं जो आनंद है, अुसका अधीष्ठान त्याग है। मां कै हृदय मैं वह जो सीमीत करुणा है, वैसी ही जनता कै लीअै असीम, अपार करुणा पैदा होगी, तब मनुष्य नीकल पड़ेगा और त्याग करेगा अैवं अैसा ही मनुष्य अीस काम मैं टीकेगा। दूसरा कोअी नीकलेगा, तो वह थाया जायेगा ! जंगल मैं नीकल पड़े, तो वहां पर मनुष्य को थानै वाले जानवर बैठै हैं। अुसी तरह मनुष्य जब सेवा कै लीअै नीकल पड़ेगा, तो अुसै अीस संस्था नै थाया, अुस संस्था नै थाया, अैसा होता है ! थानै वाली संस्थाअै जगह-जगह मौजूद हैं ! अीन सबसै अलग रह कर काम करना, यह भी अेक बड़ी बात है। जो लोग भीन्न-भीन्न संस्थाओं कै अंदर जाते हैं, अुनकी करुणा का झरना सूअता जाता है। अीसलीअै पहली बात है, घर की आसक्ती छोड़ना, भोग को छोड़ कर त्याग को अपनाना और दूसरी बात है, घर छोड़नै कै बाद संस्थाअै हमैं न था डालै, अीसलीअै सतर्क रहना। मनुष्य अीन दोनों सै बचा, तो फीर वह जनता की सेवा कर सकता है। संस्थाओं मैं फंस गया, तो फीर वह चुनाव आदी कै झगड़ै मैं पड़ता है, यानै स्वार्थ कै झगड़ै सै छुटा और अीस झगड़ै मैं फंस गया। जाती, कुल आदी भेदभाव का जैसा दुष्टचक्र है, अीसी तरह संस्था भी अेक दुष्टचक्र है। संस्थाओं कै साथ अुनकी योजना होती है। अुनमैं मनुष्य-जीवन शुष्क हो जाता है। मनुष्य कै ये दो शत्रु है। अेक घर कै अंदर है और दूसरा घर कै बाहर है। घर मैं भोगासक्ती और सवार्थ है, बाहर संस्थाअै और पक्षासक्ती है। अीस तरह मनुष्य जब घर वालै और संस्थाअै, अीन दोनों सै मुक्त होगा, तब काम करेगा। अीसलीअै भूदान-यज्ञ कै काम मैं कठीनाअी आती है। फीर भी हरी का काम है, तो हरी प्रेरणा दैता है अीसलीअै कोअी काम कै लीअै नीकल आतै हैं।

(नागलींगपुरम्, कोअींबतूर, १३-१०-'५६)

सर्वदा समः सर्वेण समः

(काका कालेलकर)

महामनाः स्यात् तद् व्रतम्—छान्दोग्य २-११-२

उपनिषदों में आत्मचिन्तन और ब्रह्म की उपासना, इन दोनों का जितना महत्त्व है, उतना ही प्राणोपासना को महत्त्व दिया है। साधना के लिए आवश्यक सब तरह का वीर्य और चारित्र्य-तेज प्राणोपासना से ही प्राप्त होता है। प्राणोपासक कभी कृपण नहीं होता, हीन-दीन होकर याचना नहीं करता। उसके लिए व्रत बताया गया है, 'महामना' बनने का। प्राणोपासक को 'महामना' यानी उदारचेता बनना चाहिए, यही है उसका व्रत।

महाभारत में धर्मराज ने भी अपना अन्तिम सन्देश देते हुए कहा—"आप अपनी बुद्धि धर्म में स्थिर करें और इससे भी विशेष आपका मन महान् रहे—मनस्तु महत् अस्तु च।"

यह बड़ा मन क्या वस्तु है, सोचना चाहिए। एक ही परिस्थिति में दो व्यक्तियों में पूरी-पूरी तटस्थता और न्यायबुद्धि होते हुए भी एक आदमी एक ढंग से पेश आयेगा, दूसरा दूसरे ढंग से। एक कहेगा—"मैं इन्साफ़ का कायल हूँ, प्रामाणिकता से चलना चाहता हूँ, मेरे पास तनिक भी पक्षपात नहीं है, जो योग्य होगा, वही करूँगा।

दूसरा कहेगा—"आपने जितना कुछ कहा है सही है, जो योग्य होगा, वही करना है। लेकिन योग्य क्या है, उसे समझने के लिए केवल न्याय का तरा काम का नहीं; मानवता का, प्रेम का, आत्मीयता का, सर्वोदय का तराजू हाथ में लेना चाहिए।" वह न्याय को समझता है, अन्याय कभी भी नहीं करेगा। लेकिन न्याय से भी परे दूसरे उच्च तत्त्व हैं, उन तत्त्वों को समझ कर, उनका सहारा लेकर न्याय करेगा।

एक गड़रिया एक से दूसरे गाँव को जा रहा था। रास्ते में उसकी भेड़ों ने किसी किसान के खेत में जाकर उसका सारा खेत नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। किसान ने सुलेमान के पास जाकर शिकायत की। सुलेमान न्यायी राजा था। उसने कहा—"किसान का कितना नुकसान हुआ है, इसका हिसाब करो। उस कीमत की भेड़ें किसान को दी जायें।" राजकर्मचारियों ने हिसाब लगाया। इतना कुछ नुकसान हुआ था कि गड़रिये को अपनी सबकी-सब भेड़ें देनी पड़ीं। बेचारा गड़रिया रोता-रोता न्याय-मन्दिर से बाहर चला। राजपुत्र वहीं से जा रहा था। उसने सारा हाल पूछा। सुनने के बाद उसने पिता के पास जाकर कहा, "इस मामले में न्याय नहीं हो रहा है। क्या कभी न्याय किसीका सर्वनाश कर सकता है?" न्यायपूर्ण सुलेमान को आश्चर्य हुआ कि मेरी न्यायप्रियता में भी नुक्स निकालने वाला कोई निकला। राजपुत्र ने कहा—"न्याय तो करना ही है। लेकिन सर्वनाश के बिना करना चाहिए।" उसने सुझाया कि "गड़रिया अपनी सारी भेड़ें लेकर किसान के यहाँ जाकर रहे। भेड़ें खेत में बैठ कर खेत को कीमती खाद देंगी। गड़रिया किसान के घर पर मजदूरी करके कुछ पैसा चुकायेगा। भेड़ों के बच्चे होंगे, वे भी किसान को दिये जायेंगे। इस तरह से किसान की नुकसान-भरपाई होने पर गड़रिया अपनी भेड़ें लेकर अपने रास्ते जा सकता है।"

राजपुत्र ने भी न्याय ही किया, किन्तु वह महामना था। उसके मन में सबके प्रति प्रेमभाव था। वह सबका कल्याण चाहता था।

इसीलिए पुराण में भी कहा है—हरएक मनुष्य न्याय पाने का हकदार है, लेकिन न्याय से भी बढ़कर है, सबूरी और क्षमा। भगवान् न्याय को अपनी मंजूरी देता है, लेकिन भगवान् को सबूरी और क्षमा ज्यादा प्यारी है!

महामना आदमी बुद्धिमान होता ही है, लेकिन साथ-साथ हृदयवान भी होता है। बुद्धि और हृदय मनुष्य-जीवन के दो पंख हैं। पक्षी एक पंख से नहीं उड़ सकता, दोनों पंखों की आवश्यकता है।

हृदय का बड़प्पन तभी मनुष्य को प्राप्त होता है, जब वह दिन-पर-दिन अद्वैत की ओर बढ़ता है। अगर दो भाई लड़ते हैं, तो बड़े हृदय का आदमी एक का पक्षापात नहीं करेगा। न्याय किस पक्ष में है, यह जानते हुए भी दोनों को संभालने की कोशिश करेगा।

हमारे शास्त्रों में इस तत्त्व को 'सम' कहा है। अंग्रेजी में इसे शायद इक्विटी (Equity) कहते हैं। उपनिषदों में ब्रह्मोपासक के बारे में कहा है कि वह 'सर्वदा समः', 'सर्वेण समः' होता है। (९-९-५५)

("मंगल प्रभात" से)

---

www.vinoba.in

जब शंकराचार्य की कोटि की स्त्री निकलेगी !

(विनोबा)

मैं मानता हूँ कि हिंदू धर्म ने स्त्रियों पर कुछ अन्याय किया है। पुरुषों को डर लगता था कि स्त्रियों को पारमार्थिक कार्य में प्रवेश देने से खतरा पैदा होगा ! भगवान् बुद्ध भी आरंभ में स्त्रियों को दीक्षा नहीं देते थे। एक दफा उनके शिष्य आनंद एक स्त्री को लेकर आये और भगवान् से कहने लगे कि 'इसे दीक्षा दीजिये, यह स्त्री-दीक्षा के लिए अत्यंत लायक है, शायद हमसे भी अधिक।' तब भगवान् बुद्ध ने उस स्त्री को दीक्षा देना स्वीकार किया। परंतु उन्होंने उस समय आनंद से कहा : "आनन्द मैं एक खतरा उठा रहा हूँ !" महावीर स्वामी बुद्ध भगवान् के कुछ ३०-४० साल पहले हुए। वे इतने निर्भय थे कि उनसे अधिक निर्भय व्यक्ति शायद ही कोई हो। स्त्री और पुरुषों को समान अधिकार हैं, इस बात को वे अक्षरशः मानते थे। वे मानते थे कि संन्यास का, ब्रह्मचर्य का, मोक्ष का अधिकार स्त्री और पुरुष, दोनों को है। वे अत्यंत निर्विकार थे, नग्न घूमते थे। जैनियों में पुरुषों के समान सैकड़ों स्त्री संन्यासीनियाँ काम करती थीं। उनमें दो प्रकार होते हैं, श्रमण और श्रावक। श्रमण याने संन्यासी और श्रावक याने गृहस्थाश्रम में रह कर धर्मकार्य करने वाला। उनमें जितने श्रमण थे, उनसे अधिक श्रमणियाँ थीं और आज भी जैन संन्यासीनी धर्मप्रचार करती रहती हैं। स्त्रियों को दीक्षा देने के विषय में बुद्ध भगवान् को जो डर था, वह महावीर स्वामी को नहीं था।

यह तो पुरानी बात हो गयी। आज भी, यद्यपि रामकृष्ण परमहंस के आश्रम में शारदादेवी पहले से ही थीं, फिर भी स्त्रियों को वहाँ दीक्षा नहीं दी जाती थी। अब पिछले साल से वहाँ स्त्रियों को दीक्षा देना आरंभ हुआ है। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें भी इस कार्य का आरंभ करने में इतना समय बिताना पड़ा। पर गांधीजी को इसमें कोई दिक्कत नहीं मालूम हुई, क्योंकि यद्यपि वे मानते थे कि संन्यास का अधिकार सबको है, फिर भी वे किसीको भी दीक्षा नहीं देते थे। जहाँ दीक्षा देने की बात आती है, वहाँ बहुत दृढ़ता की आवश्यकता होती है। जरा भी दोष आ जाय, तो उससे संस्था कलुषित होती है। दीक्षा देने की आवश्यकता भी गांधीजी को नहीं महसूस हुई और उन्होंने उसके बिना ही शुद्ध रहने का मार्ग बताया। उन्होंने एक नया विचार दिया कि गृहस्थ को ही वानप्रस्थ बनना चाहिए, याने चंद दिन संसार में बिता कर पति-पत्नी को वानप्रस्थ बन कर रहना चाहिए और गृहस्थाश्रम में संयम होना चाहिए। इसमें ढोंग नहीं आ सकता है और साधकों की साधना को पूरी गुंजाइश मिलती है। गांधीजी ने स्त्री-पुरुष, दोनों को समान अधिकार दिये। परंतु दीक्षा देने वालों को स्त्रियों को दीक्षा देने में भय मालूम होता था। मीराबाई एक दफा मथुरा-वृन्दावन गयी थीं। वहाँ एक संन्यासी रहते थे। मीराबाई ने उनके दर्शन की इच्छा प्रकट की, परंतु उनके शिष्यों ने बताया कि हमारे गुरु स्त्रियों को दर्शन नहीं देते हैं। उस पर मीराबाई ने वहीं पर एक भजन बनाया है :

'हूँ तो जाणती हती जे व्रजमा पुरुष छे एक।
व्रजमें वसीने तमे पुरुष रह्या छो तेमा भलो तमारो विवेक !'

('मैं तो समझती थी कि व्रज में सिर्फ एक ही पुरुष है और बाकी सारी गोपियाँ हैं। व्रज में रह कर भी आप पुरुष बने रहे, तो आपके विवेक के लिए क्या कहे ?') जब शिष्यों ने गुरु को यह सुनाया, तब गुरु को लगा कि इसे दर्शन देना उचित है और फिर उन्होंने दर्शन दिये !

संन्यास, ब्रह्मचर्य और परिव्रज्या लेने की इजाजत हो, तो भी हजारों स्त्रियाँ संन्यासी बनेंगी, ऐसी बात नहीं है। आज पुरुषों को इजाजत है, तो भी हजारों पुरुष संन्यासी थोड़े ही बनते हैं ? परंतु इजाजत न होना, एक disability (अपात्रता) होना याने प्रगति के लिए रुकावट है। हिंदू धर्म में पहले ऐसा नहीं था, परंतु बीच में माना गया कि कलियुग में संन्यास सबके लिए वर्ज्य है। इस पर प्रहार शांकर संप्रदाय से हुआ। शंकराचार्य के गुरु संन्यासी थे। परंतु वे पहले गृहस्थाश्रमी थे और बाद में उन्होंने संन्यास लिया। शंकराचार्य ने ब्रह्मचर्य में से ही संन्यासी होने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने अपनी माँ से संन्यास की इजाजत माँगी। वह नहीं देना चाहती थी, परंतु आखिर उसे वह देनी पड़ी।

आज हम शंकराचार्य का अत्यंत गौरव गाते हैं। हिंदू धर्म पर श्रीकृष्ण भगवान् के बाद सबसे ज्यादा असर किसी व्यक्ति का हुआ हो, तो शंकराचार्य का हुआ है। उनके भाष्य-स्तोत्र आदि देश भर सर्वत्र पढ़े जाते हैं। परंतु उनके रहते जो हालत थी, उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। शंकराचार्य संन्यास लेकर निकले और उत्तर में घूम रहे थे, तो उन्हें माता का स्मरण होने लगा। उन्होंने सोचा कि स्मरण हुआ है, इसका मतलब है कि माँ मुझे बुला रही है। इसलिए वे दक्षिण की ओर वापस चल पड़े। जब घर पहुँचे, तब उनकी माता की मरने की तैयारी थी। माँ को भगवान् का दर्शन होना चाहिए, इसलिए उन्होंने कृष्णाष्टक बनाया और माँ के मुँह से उसका उच्चारण कराया। उसकी अंतिम पंक्ति का उच्चारण होते ही माँ को भगवान् का दर्शन हुआ, ऐसी कहानी है।

माँ ने अपने लड़के को संन्यास लेने के लिए इजाजत दी थी और कलियुग में तो संन्यास वर्ज्य माना गया था। इसलिए उनके समाज की तरफ से याने नंबुद्री ब्राह्मणों की तरफ से उन पर बहिष्कार था—जैसे टालस्टाय पर पोप की ओर से बहिष्कार था या जैसे गांधीजी को हिंदू धर्म का वैरी समझ कर मारा गया था। बहिष्कार के कारण माँ की स्मशान-यात्रा के लिए ब्राह्मणों में से एक भी मनुष्य नहीं आया। जातिभेद था, इसलिए दूसरी जातिवाले तो आ ही नहीं सकते थे। लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया, तो फिर शंकराचार्य ने तलवार से लाश के तीन टुकड़े किये और एक-एक टुकड़ा ले जाकर जलाया। वे अत्यंत प्रखर ज्ञानी थे। ऐसे मौके पर भी वे पिघले नहीं। अगर वे माफी मांगते, तो ब्राह्मण स्मशान-यात्रा के लिए आते। परंतु उन्होंने माफी नहीं माँगी।

अब शंकराचार्य के लिए इतना आदर है कि नंबुद्री ब्राह्मणों में, उनकी स्मृति में, लाश पर तीन लकीरें, जलाने के पहले खींचते हैं। परंतु उस जमाने में समाज इतना कठोर था कि माँ की लाश उठाने के लिए कोई नहीं आया ! **फिर भी शंकराचार्य ने समाज पर कोई आक्षेप नहीं किया। उनके ग्रन्थों में कहीं भी कटुता नहीं है। उत्तम सुधारक का यही लक्षण है।** शंकराचार्य को संन्यास का हक प्राप्त करने के लिए इतना करना पड़ा। इसी तरह एक-एक हक प्राप्त करना होता है। स्त्री-पुरुषों की समानता का हक भी ऐसा ही प्राप्त करना होगा। स्त्रियाँ अगर पुरुषों की बराबरी में बीड़ी पीना चाहती हों, तो वह हक उन्हें आसानी से मिल सकता है। परंतु वे संन्यास का, ब्रह्मचर्य का, परिव्रज्या का, मोक्ष का हक चाहती हैं, तो कोई ज्ञानवान, प्रखर, वैराग्यसंपन्न स्त्री निकलेगी, तब वह हक हासिल होगा। गांधीजी के देने से उन्हें यह हक हासिल नहीं होगा, न और किसीके देने से हासिल होगा। जब शंकराचार्य की कोटि की कोई स्त्री निकलेगी, तभी उन्हें वह हक हासिल होगा !

(अ. भा. कस्तूरबा-ट्रस्ट की अध्यक्षा एवं मंत्राणी से बातचीत, ता. ११-१०-'५६)

'अल्हम्दुलिल्लाह' के मानी

(रैहाना तैयबजी)

सन् '३५ की बात है। मसूरी में श्री स्वामी भोलानाथजी के यहाँ सत्संग और अध्यात्म-चर्चा चल रही थी। स्वामीजी ने एक कथा बयान की, जिसका मेरे मन और जीवन पर गहरा असर पड़ा। प्रभुसमर्पण की उन्नत वृत्ति की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा : "...में एक भंगी रहता था। रास्तों में आते-जाते जो मिलता, उसे हाथ जोड़-जोड़ कर 'सलाम, लालाजी ! प्रणाम, लालाजी !' कहता रहता। कोई प्रणाम-सलाम लेते, कोई न लेते। भंगी ही तो था !

"एक दिन उस भंगी को लाटरी में लाख रुपया मिल गया। अब वह भी लालाजी बन गये ! अच्छा-सा मकान, सामान, पोशाक—क्या कहने ! अब जब वह रास्ते में जाते, तो लोग पहले उन्हें हाथ जोड़ कर, 'सलाम लालाजी ! प्रणाम लालाजी !' कहते जाते। हर एक को वह एक ही जवाब देते—'पहुँचा दूँगा।' बार-बार यही जवाब पाकर एक रोज उनके एक मित्र के दिल में चटपटी-सी लग गयी कि ये क्या पहुँचायेंगे और किसको पहुँचायेंगे ? चुनांचे वह जरा छिप-छिप कर उनके पीछे हो लिया, उनके घर पहुँचा, उनके घर में घुस गया और जिस कमरे में वे दाखिल हुए, उसके दरवाजे पर खड़ा होकर एक अजीब तमाशा देखने लगा।

"वह 'माजी' भंगी और आज के लालाजी सीधे अपनी तिजोरी के सामने जा खड़े हुए। उसे खोला। हाथ बाँधे। सर नवाया और अत्यंत पूज्य भाव से बोले, 'लक्ष्मी माता, मैं वही हूँ, जो पहले था। पर तू जब से इस तिजोरी में आ बैठी है, तब से मैं लाला बना हूँ और सब मुझे प्रणाम-सलाम करने लगे हैं। पर ये प्रणाम-सलाम मुझे नहीं हैं, माँ ! ये तो तेरे लिए हैं, तो ले तुझे पहुँचा देता हूँ। स्वीकार करना। फलाँ रास्ते पर फलाँ मिले थे। उन्होंने तुझे प्रणाम कहा था, फलाँ ने सलाम कहा, फलाँ ने जयराम कहा।' वगैरा-वगैरा। वह मित्र बड़ा झेंपा, एक बहुत कीमती सबक सीख कर दबे पाँव वहाँ से भाग निकला।" हमारे वाक्य 'अल्हम्दुलिल्लाह' का ठीक यही मतलब और भावार्थ है : 'सब तारीफ है, अल्लाह की।'

("मंगल प्रभात" से)

---

www.vinoba.in

ग्रामोद्योगों की दृष्टि कैसी हो ?

(झवेरभाई पटेल)

आज तक रचनात्मक काम करने वालों ने व्यक्तिगत रूप से अपीलें कीं और व्यक्तिगत रूप से कार्य भी किया। जितने लोगों की अपील होती है, वे सहयोग देते हैं, पर जिन्हें अपील नहीं होती, उन्हें रास्ते पर लाने का हमारे पास क्या आधार है ?

विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था सत्ता और सम्पत्ति के विकेन्द्रीकरण के लिए जरूरी है। व्यापारी आपके ग्रामोद्योगों में मदद दे, इसके लिए भी हमारे पास क्या Sanction (ताक़त) है ? जो सहयोग नहीं देते हैं, वे सहयोग दें, यह कैसे होगा ? सबको काम देना चाहिए, यह तो आज सामान्य सिद्धांत के रूप में मान लिया जाता है। पर ग्रामोद्योग की बात पर योजनावाले श्रोता बन जाते हैं और उसमें नुक्स निकालते हैं। आज सबको काम देने की जिम्मेदारी भी वे लेने को तैयार नहीं हैं।

बड़े उद्योग, छोटे उद्योग, ग्राम-उद्योग, इनका समन्वय भी आज नहीं हो रहा है। लक्ष्य अधिकतर शहर ही है। एक विदेशी महाशय ने यूनिवर्सिटी के चांसलरों की मुलाकात ली, तो उन्होंने देखा कि उनके दिमाग में देहातों का अस्तित्व ही नहीं है ! प्लैनिंगवालों के बारे में भी यही बात है। देहातों में कल्याण-प्रवृत्तियाँ चल तो सकती हैं, पर शहरों में जो संग्रहित संपत्ति है, वह देहातों में जाय, इसके लिए कुछ भी नहीं किया जाता।

गांधीजी ग्रामोद्योग में सभी शक्तियाँ चाहते थे, पर वे शक्तियाँ समाजहित-विरोधी न हों, यह उनका आग्रह था। दो परिणाम वे चाहते थे—"शोषण न बढ़े और बेकारी न बढ़े।" प्रश्न है कि यह कैसे हो ? गाँव कैसे बचें ? कम्युनिस्ट राज्यों में भी किसानों को दबाया जा सकता है, यह युगोस्लाविया में गये डेलीगेशनों की एक रिपोर्ट में मैंने खुद पढ़ा है !

समाज का नियंत्रण

व्यक्तिगत अपील तो कारगर साबित नहीं हुई है। तो समाज-हित का जहाँ विरोध हो रहा हो, पहले उसे ठीक किया जाय। उसके लिए आंतरिक भावना ही काफ़ी नहीं है। गांधीजी ने कहा है कि आदमी सामाजिक प्राणी है, इसलिए सामाजिक अंकुश उस पर रहना चाहिए। जितनी मात्रा में वह खुद समझे, वह स्वतंत्र, जितनी मात्रा में वह खुद न समझे, उस पर उतना अंकुश रखना चाहिए। गांधीजी की तीन मुख्य विशेषताएँ इस मामले में काफ़ी मार्गदर्शन करती हैं। एक विकेन्द्रीकरण, दूसरी, जीवन के एक अंश को ही न देख कर सारे जीवन का समग्र दर्शन करना और तीसरी, जीवन के नैतिक मूल्यों के हिसाब से ही समाज-रचना करना। समाज का नियंत्रण उस पर जरूर चाहिए। अगर गाँव का व्यापारी गाँव के हित का विरोध करता है, तो समाज का बाह्य नियंत्रण उस पर लागू करेंगे। क्रांति (Revolution) जब तक संस्थागत (Institutionalised) नहीं होती है, तब तक सिद्ध नहीं होती। व्यापार करना (Private sector) या और कोई सामाजिक धंधा (Public sector) करना, इसमें कौनसा उचित है, समाज देखे। क्रांति संस्थागत होनी चाहिए। समाज के हित में (Private sector) नहीं है, तो हम तय करेंगे कि व्यापार करने का व्यक्ति को अधिकार नहीं देना चाहिए—दूसरों की मेहनत का फल भोगने का अधिकार व्यक्ति को नहीं होना चाहिए। जब और लोगों की मेहनत का लाभ भोगने का मौका व्यापार में मिलता है, तो उसे सामाजिक धंधा कर देना चाहिए।

व्यापार और कारखाना सामाजिक धंधा है, पर किसान और कारीगर जितना अपनी मेहनत से कर लेता है, उसे खानगी रखा जा सकता है।

आज तक ग्रामोद्योग की प्रवृत्ति को हमने दान की प्रवृत्ति माना। गरीबों को कोई दे तो दे, न दे तो उसे हम गुनाह नहीं मानते। दान की भावना ही यह है। पर ग्रामोद्योग को दान नहीं, सामाजिक न्याय की बुनियाद पर रखना चाहिए। जो इसमें सहयोग नहीं देता, वह गुनाहगार माना जाना चाहिए और समाज भी इसे मानेगा। ग्रामोद्योगों की न्याय की भूमिका कैसे बने, यह सोचना है। हर एक को समान मौका मिलना चाहिए। यह भी मानना है। इस भूमिका पर गाँवों में सबको काम दिलाना हमारा प्रथम फर्ज है। ग्रामोद्योग की मार्फत देश अमीर नहीं बन सकता है, ऐसी जो मान्यता है, उसे भी दूर करना चाहिए। हमें साबित करना चाहिए कि ग्रामोद्योगों से समृद्ध जीवन हो सकता है और जैसे-जैसे विकास-कार्यक्रम देश में खड़े होते हैं, हमें दिखना चाहिए कि गाँव का जीवन कैसे टूटता जा रहा है। अभी हमारे गाँवों में सहजीवन का जो अभाव है, उसे उत्पन्न करना चाहिए।

नये कारखाने, आज का शिक्षण, नये-नये रास्ते ग्रामस्वावलम्बन को तोड़ने वाले साबित हो रहे हैं। सारी बातें संरक्षण की दृष्टि से न सोच कर इन चीजों को हजम करने की शक्ति पैदा करनी चाहिए। पक्के रास्ते भी हमारे लिए आज प्रतिस्पर्धी सिद्ध हो रहे हैं—पर उसे आज हमें हजम करना चाहिए। नयी-नयी प्रवृत्तियाँ Dynamic economics (गत्यात्मक अर्थनीति) के नाम से पुकारी जाती हैं। आज हमारे अर्थशास्त्र को Static (स्थिर) का नाम दिया जाता है। पर सचमुच हम तो उसे Dynamic economics में मानते हैं।

जनता तक पहुँचें

गाँव की साधारण दशा भी सुधारनी चाहिए। बुद्धिमान लोगों के लिए गाँव में जाकर रह सकने लायक गाँव को बनाना चाहिए। ग्राम-जीवन के सुधार के साथ ही ग्रामोद्योग बढ़ेंगे। सुधरे हुए औजारों के साथ हमारी बेकारी बढ़ेगी, ऐसा हम मान लेते हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि आज जो हमारी आवश्यकता है, उसीके मुताबिक हम हिसाब लगाते हैं। पर हमें तो मानना चाहिए कि कम-से-कम स्तर जिस वस्तु के लिए है, उतनों का उत्पादन करना होगा। हमारी चीजें बहुत बढ़ती हैं, इसलिए औजार सुधारने में कोई दिक्कत नहीं है। दिक्कत तो यह है कि बिजली गाँववालों को सरकार देना नहीं चाहती और कहती है कि सर्वोदयवाले नहीं चाहते। सरकार को इस रास्ते पर लाने के लिए हमें अपने तरीके में फर्क करना पड़ेगा।

आज तक प्रतीकात्मक काम हमने ग्रामोद्योग के लिए किये—आश्रमों में, संस्थाओं में बहुत मर्यादित प्रवृत्तियाँ रहीं। पर हमें तो राष्ट्रव्यापी काम करना है। आज तो उद्योगों का संगठन होना चाहिए और उस किस्म की एजेन्सी बनानी चाहिए। संस्थागत कार्यक्रम जब तक है, वह कार्यकर्ताओं का ही कार्य रहेगा। पर यदि वह समाज का बनेगा, तो सरकार को भी मानना पड़ेगा। भारत में यह सनातन चर्चा का विषय है कि ग्रामोद्योग चाहिए या नहीं। हमें इसके लिए प्रजा-व्यापी संगठन बनाना चाहिए। प्रजा की प्रवृत्ति बनानी हो, तो हमें कार्यकर्ताओं के घेरे से उसे निकालना होगा। नये लोग आयें, स्वार्थी तत्त्व दूर हों, इसी दृष्टि से तेलघानी का संगठन बनाना चाहिए।*

* उज्जैन में तेल-उद्योग के कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में दिया गया भाषण।

अम्बर चरखे के बारे में एक सुझाव

(देवेन्द्रकुमार)

अम्बर चरखा सूत कातने के उत्पादन की दृष्टि से एक अधिक कार्यक्षम यंत्र है, इसलिए उसका प्रचार अधिकाधिक होना चाहिए, परंतु आज सब जगह उसके पहुँचने में देर लगेगी। अतः समाज की लाचार से लाचार इकाई को आर्थिक सहारा देने की मामूली चरखे की जो क्षमता है, वह इसके प्रचार और प्रसार-काल में नष्ट नहीं होनी चाहिए। मामूली चरखा आज सर्वसुलभ है। अंबर को सर्वसुलभ, सार्वत्रिक बनाने में दो-चार साल का समय लगेगा। उस काल तक खादी की सामाजिक सुरक्षा का गुण नष्ट न होने पाये, इसके लिए यह आवश्यक है कि सूत-कताई के दाम मामूली चरखे के और अंबर चरखे के एक ही होने चाहिए। जितना उत्पादन-क्षमता का भेद तकली और मामूली चरखे में है, उतना ही चरखे और अंबर में है, परंतु तीनों में गुंडी पीछे एक दर से कताई दी जाय। जिस गुंडी के दो आने तकली और चरखे की कताई के मिलते हैं, उतने ही अंबर से कती उस नम्बर के सूत की गुंडी की कताई के भी दिये जाने चाहिए। इससे अंबर चरखा चलाने वाले को उत्पादन के अनुपात में अधिक आमदनी अवश्य होगी, परंतु मामूली चरखे से कातने वाले को कोई नुकसान न होगा।

इस सिद्धांत को यदि मानें, तो अम्बर की खादी का दाम भी वही रहेगा, जो मामूली खादी का है। कातने वाले, बुनने वाले और बेचने वाले—तीनों को अंबर चरखे के उद्योग से लाभांश अधिक मिलेगा और यह स्थिति वांछनीय भी है। इससे तीनों अम्बर के प्रचार के लिए उत्सुक रहेंगे, परंतु बाजार में खादी-खादी के बीच में भेद पैदा नहीं होगा। वैसा भेद हर स्थिति में गलतफहमी और परेशानी पैदा करने वाला होगा। ताना अम्बर और बाना मामूली सूत का रखने से भी वह भेद समाप्त हो सकेगा। किसी भी हालत में कातने या खरीदने वाले को भेद महसूस न होना चाहिए। जो नीति तकली और चरखे के सूत और उनके कपड़े में भेद रखने के अर्थशास्त्र में लागू होती है, वही वहाँ भी की जानी चाहिए।

www.vinoba.in

हमारी बालगोष्ठी :

वर्षगाँठ

(आसाराम वर्मा, वर्धा)

(कुमार अभय झूले पर बैठा है। बहनें झूला झुलाती हुई गा रही हैं।)

फलना फूलना रे। झूला झूलना रे॥
रेशम की रस्सी पर सुन्दर
चन्दन की सुन्दर पटिया पर
राजाजी - से चढ़ कर उस पर
झूमना रे। झूला झूलना रे॥
ऊँचे - ऊँचे नभ के ऊपर
ऊँचा - ऊँचा झोंका लेकर
कंचन की वह कलियाँ सुन्दर
लूटना रे। झूला झूलना रे॥
अम्बर की सीपों - से सुन्दर
तारों के दीपों - से सुन्दर
भारत माँ का मंगल मन्दिर
पूजना रे। झूला झूलना रे॥

कुमार अभय—"मेरी वर्ष गाँठ है, मुझको तिलक लगाओ मैया
फूल चढाओ प्यारी दीदी, पान चढ़ाओ
(बहनें तिलक लगा कर फूलों का हार पहनाती हैं)

पहली बहन—"मैं लायी हूँ मोहक मुरली मीठी इसकी तान।
अपने छिद्रों से छलकाती यह अमृत का दान॥
यह गोकुल की स्वर-रानी है, रचती ब्रज में रास।
यह तो मन-मोहन की दासी, मोहन इसके दास।
(मुरली बजाते हुए) प्यारे भैया, बनो कन्हैया।"

कुमार अभय—"ना-ना दीदी, ना-ना भैया।"

दूसरी बहन—"मैं लायी हूँ रणचण्डी की बेटी यह बन्दूक।
यह दुश्मन के सिर गिनती है इसका लक्ष अचूक॥
यह वीरों की कुल-लक्ष्मी है, दुर्गा का अवतार।
सारी धरती पर इसका ही चलता है अधिकार॥"
(बन्दूक देते हुए) प्यारे भैया बनो सिपैया।"

कुमार अभय—"ना-ना दीदी, ना-ना भैया॥"

तीसरी बहन—"मैं लायी हूँ बटवा, इसमें कुबेर का है वास।
है यह जीवन के ताले की सुख की चाबी खास॥
सोने चाँदी-से त्रिभुवन के स्वामी को भी तौल।
कर सकता है अपने वश में ले सकता है मोल॥
(बटवा देते हुए) प्यारे भैया बनो सिठैया।"

कुमार अभय—"ना-ना दीदी, ना-ना भैया।"

चौथी बहन—"मैं लायी हूँ सरस्वती की कन्या कलम-सुजान।
यह अपनी चंचू से जग को देती जग-मग ज्ञान॥
तुलसी, रवीन्द्र, गांधी की यह मां हैं मानो शान्ति।
दानवता की छाती पर यह करती है नित क्रान्ति॥
(कलम देते हुए) प्यारे भैया, बनो लिखैया।"

कुमार अभय—"ना-ना दीदी, ना-ना भैया।"

पाँचवीं बहन—"मैं लायी खेतों का राजा, हल है इसका नाम।
किसान इसकी प्रजा चिरन्तन, श्रम-मन्त्री बलराम॥
हल ही तो धरती की मुट्ठी खोला करता बन्द।
जिसमें मानिक, मूंगा, मोती, जग-जीवन के छन्द॥
(हल देते हुए) प्यारे भैया बनो हलैया।"

कुमार अभय—(प्रसन्नता से) "हाँ-हा दीदी, हाँ-हाँ भैया॥"
अच्छी दीदी, तुम लायी हो कितनी अच्छी चीज।
किसान बन कर मैं धरती में बोऊँगा अब बीज॥

पहली बहन—(व्यंग से) "किसान का है बुद्धू नाम।"

कुमार अभय—"वह अन्नदाता सबका राम॥"

दूसरी बहन—"बैलों का वह साथी बैल।"
कुमार अभय—"उसके मन में तनिक न मैल॥"
तीसरी बहन—"वह निर्धन, वह दरिद्र, दीन।"
कुमार अभय—वह सबकी सेवा में लीन॥"
चौथी बहन—(झुँझला कर) "तुम मत बोलो, तू रे बोल।"
कुमार अभय—"मेरी टेक न सकती डोल।"
पहली बहन—"किन्तु न भूमि तुम्हारे पास।
कुमार अभय—(एक क्षण सोच कर—चुटकी बजाते हुए)
"पूज्य विनोबा की है आस।"
सब बहनें एकसाथ :—"हम हारीं, तुम पाये जीत।
कुमार अभय—(प्रसन्नता से) "गाओ भूमि-दान का गीत॥"
(सब बहनें गाती हैं। अभय अभिनय करता है।)

"भू-दान करो। भू-दान करो।
सर्वोदय का गान करो॥"
उषा जिसको है दुलराती
बादल-बाला है सहलाती
चिड़िया जिसकी महिमा गाती
कुटिया की उस श्रम-देवी का
खेतों में उत्थान करो।
भू-दान करो। भू-दान करो।
सर्वोदय का गान करो॥
धरती सबकी, नहीं एक की
धरती है माता अनेक की
गूंजी है वाणी विवेक की
जिसके पास न भूमि तनिक भी
उसको भूमि प्रदान करो।
भू-दान करो। भू-दान करो।
सर्वोदय का गान करो॥
रक्त-हीन यह क्रान्ति जयी हो।
क्रान्ति जयी हो, शान्ति जयी हो॥
मानव की उत्क्रान्ति जयी हो।
धरती माता की बिंदिया का
कुंकुम बन बलिदान करो॥
भू-दान करो। भू-दान करो।
सर्वोदय का गान करो॥

अभय—"राष्ट्रसंत विनोबा की···"
बहनें—"जय !"
अभय—"भू-दान यज्ञ की···"
बहनें—"जय !"

स्वदेशी और ग्रामोद्योग की तात्त्विक भूमिका

(नेमिशरण मित्तल)

स्वराज्य-प्राप्ति के लिए स्वदेशी का महत्त्व लोगों ने समझा और उसे एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में अपनाया भी, परन्तु उससे आगे जाने में अदम स्मिथ और मार्शल के रूढ़िगत अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त उनके मार्ग में आड़े आने लगे। स्वदेशी का जो राष्ट्रीय पहलू था, वह १९४७ के साथ इस देश में समाप्त तो होता है, परन्तु स्वदेशी का कार्यक्रम नष्ट होता है, ऐसा नहीं। स्वदेशी का कार्यक्रम एक स्थायी सत्य पर आधारित है और इसी कारण विकास के क्रम में उसका अपना स्थायी स्थान है, अतः स्वदेशी को आज राष्ट्रीय सीमाओं का अतिक्रमण करके एक जागतिक या सार्वभौमिक आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण करना चाहिए। 'स्वदेशी' के भीतर 'स्व' और 'देशी', दो शब्द समाविष्ट हैं। 'स्व' आत्मा और 'देश' स्थान का बोधक है। सूक्ष्म दृष्टि से स्वदेशी का अर्थ होता है—'आत्मा के देश का।' स्थूल रूप से आत्मा देह में प्रकट होती है, अतः उसका स्थूल अर्थ होता है—'देह के स्थान का' अर्थात् स्थानीय (लोकल)।

स्वदेशी को हमें दोनों अर्थों में ग्रहण करना चाहिए। हमारे भौतिक उपयोग की वस्तुओं के बारे में विवेक रखे बिना हमारा काम नहीं चलेगा। हमारा समूचा

www.vinoba.in

भौतिक जीवन साधन है, साध्य नहीं है। साध्य है, आत्मा का उत्कर्ष या दैवी गुणों का विकास। अपने समूचे भौतिक व्यवहार में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे आचरण मानवीय मूल्यों और मानवीय जीवन के संरक्षक हों—संहारक नहीं। हमारे उपयोग में आने वाला प्रत्येक पदार्थ ऐसा होना चाहिए कि वह हमारे (मानव जाति के) आध्यात्मिक विकास अर्थात् मानवीय—तादत्म्य या एकता में बाधक न बने। ऐसे सब पदार्थों को हम 'आत्मा के देश का' या स्वदेशी कहेंगे। मदिरा-पान से हम अपनी चेतना को खोकर पशुवत् आचरण करने लगते हैं, इससे हमारा मानवीय तेज नष्ट होता है। अतः वह 'स्वदेशी' नहीं, 'विदेशी' है। विदेशी यानी विजातीय या विरोधी देश की वस्तु। पशुत्व (पशु नहीं) मनुष्यत्व का विरोधी प्रदेश है, अतः उस ओर ले जाने वाले सभी पदार्थ विदेशी हैं। यह स्वदेशी का प्रथम विवेक है। उसका दूसरा विवेक यह है कि प्रत्येक वह पदार्थ स्वदेशी है, जो (१) मनुष्य के श्रम-पूर्ण चिन्तन और चिन्तन-पूर्ण श्रम से बना है, जिसके बनने में (२) वास्तविक उत्पादक अर्थात् श्रमिक को [अ] उत्पादन की व्यवस्था और साधनों पर पूरा अधिकार है, [ब] उसे उसके श्रम के बदले में जीवन का सम्यक् भौतिक पोषण मिलता है, [क] उसके श्रमफल पर दूसरा कोई अपना प्रभुत्व नहीं जमाता। (३) जो दूरी की दृष्टि से मेरे निकट से निकट बना है। निकटता का माप करेंगे: (४) जिसके निर्माण में स्थानीय कच्चा माल उसी जगह पक्के माल में रूपान्तरित हुआ है और स्थानीय श्रम को पूरा-पूरा काम मिला है; (५) जिसके बिकने में कोई मध्यस्थ अभिकरण (मिडिल एजन्सी) काम नहीं करती, वरन् उत्पादकों की सहकारी समितियाँ परस्पर-विनिमय का कार्य करती हैं; और (६) जिसके उत्पादन के समस्त साधन समाज में सम्यक् रीति पर अर्थात् पारिवारिक व ग्राम-आवश्यकताओं के आधार पर सर्वसुलभ हैं।

प्रतिस्पर्द्धा नहीं, सहयोग

स्वदेशी की एक और पहिचान यह है कि उसमें समूची अर्थ-व्यवस्था स्पर्द्धा पर नहीं, वरन् सहयोग पर आधारित होती है। मानवीय जीवन की एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह अनिवार्य है कि हम सहयोगी बनें। सहयोगी अर्थात् 'साथ में मिलने वाले।' संसार के हम सारे मनुष्य समान हितों वाले और समान धर्मी होवें, यह होगी सामाजिक अन्तर्विरोध की परिसमाप्ति और शान्ति की कुंजी। आखिर मनुष्य मनुष्य के विरुद्ध खड़ा क्यों हो? उसकी भौतिक आवश्यकताएँ तो प्रकृति और श्रम के संयोग से पूरी होगी। प्रकृति के उपयोग पर संसार के अन्य किसी भी प्राणी की भाँति उसका पूरा अधिकार है, इतना ही विवेक चाहिए कि हम दूसरों के प्रकृति-उपयोग के अधिकार पर अतिक्रमण न कर बैठें। श्रम की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति के पास मौजूद है। जहाँ कहीं वैयक्तिक प्रयास सफल न होता हो, वहाँ प्रकृति माँ की हम सन्तान सामूहिक और सहकारी रूप से श्रम करके उसके सामने फल की याचना करें और समान रूप से उस फल का उपयोग करें। तब अर्थ-उपार्जन और उपयोग के लिए व्यक्ति व्यक्ति से नहीं लड़ेगा। यश और प्रसिद्धि तो मिलती है, प्रेम और त्याग से; मुक्ति मिलती है, सेवा और बलिदान से। युद्ध होता है, अर्थ-संग्रह की वृत्ति से।

वस्तु-संचय-नास्तिकता का लक्षण

संचय की वृत्ति नास्तिकता का लक्षण है। नास्तिकता से हमारा अभिप्राय अनीश्वरवादिता नहीं है। नास्तिकता अवैज्ञानिकता का दूसरा नाम है। विज्ञान कहता है कि सृष्टि में पदार्थ अव्यय और अक्षय है, प्रकृति का यौवन अक्षत और सतत है। अतः विज्ञान यह भी कहता है कि प्रकृति के वरदान और उपादान भी अक्षय और निरन्तर प्राप्य हैं। जो सदा रहेगा, सदा प्राप्त होगा, उसका संचय अवैज्ञानिकता या अनास्तिकता है। आस्तिकता का अर्थ है, प्रकृति की शाश्वत क्षमता में विश्वास और नास्तिकता यानी प्रकृति की नश्वरता का भय। धर्म तो कहता ही था, विज्ञान ने भी समर्थन किया कि प्रकृति शाश्वत, चिरन्तन और अक्षर है। अतः संचय का मोह व्यर्थ ही नहीं, अनर्थ है। संचय अर्थात् दूसरों को वस्तु के उपयोग के अधिकरण से वंचित करना, यह अमानवीय है। संचय करने योग्य कोई वस्तु है, तो वह प्रेम है। समाज का विश्वास सम्पादन करना चाहिए, तभी स्वदेशी समाज का निर्माण होगा और जो प्रेममय, सेवामय व्यक्ति है, वही स्वदेशी व्यक्ति है।

उपभोग नहीं, उपयोग

मानवीय मूल्यों का प्रसाद योग से होता है, भोग से नहीं। योग और भोग में मौलिक अन्तर है। भोग इन्द्रियों को क्षणभंगुर सुख की प्रतीति देता है और शरीर को क्षीण करता है। योग इन्द्रियों के धर्म का सहज पालन है और उससे शरीर बलिष्ठ तो होता ही है, वह आत्मा के उत्थान में भी युक्त होता है। प्रधान योग है, प्राणिमात्र में अपने को देखना अर्थात् उनसे एकाकार या युक्त होना और उपयोग है, शरीर-धर्म के पालन के लिए उन वस्तुओं का प्रयोग करना, जो शरीर को सतोगुण में स्थित रख सकें। भोग-वृत्ति पशुप्रवृत्ति है। उसका परिष्कार और दैवीकरण या उन्नयन होने से वह मनुष्य में योगवृत्ति का रूप ग्रहण करती है। अतः मानवीय उपयोग की दृष्टि से बने पदार्थ ही स्वदेशी हैं। भोगवृत्ति के पोषक पदार्थ विदेशी हैं, चाहे वे ठेठ मेरे घर में ही क्यों न बने हों! इसी प्रकार वही स्वेदशी है, जो योगी है और भोगी मनुष्य विदेशी है।

मानवी शरीर-शक्ति और पशु-शक्ति, ये दोनों शक्तियाँ प्रचुर मात्रा में हमारे पास हैं। पहले हमें इन्हें काम में लगाने की योजना करनी होगी, बाद में पानी, कोयला, बिजली, अणु आदि शक्तियाँ यथावश्यक मान कर ले सकते हैं। न लेने का आग्रह नहीं है। संसार में केन्द्रित और पूँजी-आधारित उत्पादन-व्यवस्था के दुष्परिणाम प्रकट हो रहे हैं। इसके निराकरण का एक ही मार्ग है, हम पूँजीवाद और हिंसा की प्रतीक मिलों का बहिष्कार करें। स्वदेशी की जो व्याख्या हमने ऊपर की है, उसके आधार पर खादी-ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन दें।

भिखारी!

रामू ने पूछा श्यामू से "कहो दोस्त! क्या हुआ वहाँ?"
"मरा वही भूखा भिखमंगा पड़ा पड़ा जो सड़ा यहाँ॥"
"उसे कहो मत भिखमंगा वह इसी गाँव का वासी था।
मानवता का शुद्ध रूप वह श्रमिक श्रेष्ठ संन्यासी था॥

ताकत से भी अधिक कठिन वह काम सदा करता रहता,
महा मृत्यु से डट करके संग्राम सदा करता रहता!
जलना ही उसका जीवन था, ज्वालामय बस! अन्तर था,
उसे असंख्य घावों को सहसा सहलाने का डर था॥
वह करुणा की भीख किसी से कभी नहीं था माँग सका,
घृणा, पराजय, त्रास, ताड़ना सहते सहते था न थका।

श्यामू! कब किसने समझा था आँसू उसकी भाषा थी,
ठुकराये मानस की अपनी आशा थी, अभिलाषा थी।
हम खा सकें, सो सकें, गप्पें लम्बी चौड़ी हाँक सकें,
इसकी है बुनियाद कहाँ, क्या मित्र कभी भी झाँक सके?
ठंडा मीठा निर्मल जल जिस नये कुँएँ का हम पीते,
वही कुँआँ निर्माण-काल में धँसा एक दिन अनचीते।
जिसे भिखारी कहते हो तुम वही दबा मलबे नीचे,
हो अपंग वह निकला भी तो रहा सदा आँखें मींचे।

सूर हुआ पर शूर वही फिर घास छील कर लाता था,
विक्रय कर वह किसी तरह से अपना भोज्य जुटाता था।
एक रोज वह बड़े खेत का घास काटने लगा कहीं,
जमींदार के चर के हाथों बड़ी पिटाई हुई वहीं।
खुरपी और टोकरी भी तो छिनी गयी बेचारे की,
जीवन का उद्देश्य, व्यवस्था, सुविधा रही न हारे की॥

बेजमीन वह था क्या सचमुच बेज़बान था बुत ही था।
जीवन का अधिकार समझना उससे दूर बहुत था॥
वह अंधा, अधनंगा, भूखा भिखमंगी करना सीखा।
नहीं! नहीं!! वह किसी तरह था अरे पेट भरना सीखा।
जीवन का उल्लास मनुज की लाशों पर धरना सीखा।
कहीं शहीदों से भी अच्छी मौत वही मरना सीखा।
तुम उसकी इज्जत करना कब जानोगे-पहचानोगे?
वह भी भारत का सपूत था क्या श्यामू! यह मानोगे?

—"साधक"

---

www.vinoba.in

प्रांत-प्रांत की प्रवासी जमातों से—

(विनोबा)

छोटी-छोटी जमातें अगर स्वार्थसाधन के लिए कहीं बसी हों, तो उससे समाज का नुकसान होता है और जमातों का भी नुकसान होता है । परंतु छोटी जमातें अगर पारमार्थिक काम के लिए या आम समाज की सेवा के लिए बस कर अपनी विशेषता कायम रखती हों, तो उसमें लाभ है । विज्ञान के जमाने में हमें अधिक व्यापक बनने की विशेष जरूरत है । इसलिए छोटी जमातों को आम समाज में घुल-मिल जाना चाहिए । परंतु छोटी जमातों के अपने-अपने कुछ गुण भी होते हैं । उन गुणों का उपयोग आम समाज को और सारी दुनिया को देने के वास्ते जब वे इकट्ठा होती हैं, तब लाभ होता है । पुरानी वर्ण-व्यवस्था में यही दृष्टि थी । उसमें वर्णों के रूप में समाज के जो हिस्से मान लिये गये थे, वे समाज में भेद बढ़ाने के लिए नहीं, अपनी-अपनी विशेषताओं से समाज को मजबूत बनाने और उसकी सुसंगठित सेवा करने के लिए माने गये थे । अर्थात् परमार्थ सेवा-कार्य की वह कल्पना थी। परंतु पीछे उसमें स्वार्थ, अलगपन आ गया । उस अलगपन को भी इन दिनों अच्छा मानते हैं और कहते हैं कि "वह अपनी-अपनी अस्मिता है !" उच्चनीचता आने से लाभ के बदले में हानि ही हुई है, परन्तु उसकी मूल कल्पना बहुत निर्दोष है । अतः चिंतन आम जनता का ही करना चाहिए, विराट से कम नहीं करना चाहिए। तभी पूर्णानंद को पा सकते हैं । आत्मा में पूर्णानंद भरा हुआ है। आत्मा बहुत व्यापक है, परिपूर्ण है । वह केवल एक देह में नहीं है, सबमें है । हम अपने को एक देह में, एक जाति में, एक भाषा में, एक समाज में, एक राष्ट्र में सीमित कर लेते हैं, संकुचित बना लेते हैं, तो पूर्णानंद को खोते हैं और दुष्परिणाम भी भुगतते हैं । इसलिए हमेशा "मैं विराट का अंश ही हूँ," ऐसा चिंतन करना चाहिए । स्कूल में बच्चों को हम यही सिखायेंगे कि 'वे सारी दुनिया के मध्यबिंदु हैं ।' उनके सामने एक संकुचित क्षेत्र नहीं रखना चाहिए । बच्चा जन्म से ही विराट का उपासक होता है । उसका छोटा भाई या बड़ा भाई उसका जितना ध्यान खींच सकता है, उतना ही ध्यान एक कौआ भी खींच सकता है । बच्चा रोता है, तो माँ उसे समझाती नहीं, बल्कि उड़ते हुए कौए की ओर देख कर कहती है, 'देख कौआ उड़ रहा है ।' तो उसकी ओर देख कर बच्चा रोना बंद करता है और हँसने लगता है । इस तरह बच्चे में जन्म से ही स्वाभाविकतया विराट के साथ एकरूप होने की शक्ति होती है । विराट से एकरूप होना मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए चिंतन हमेशा व्यापक होना चाहिए। परंतु सेवा हम अपने शरीर से करते हैं, इसलिए सेवा हमेशा आसपास के क्षेत्र की कर सकते हैं । तभी मनुष्य का जीवन निर्दोष और परिपूर्ण बनेगा ।

इसलिए यहाँ जो छोटी-सी जमातें इकट्ठा हुई हैं, वे अगर परमार्थ के लिए इकट्ठा हुई हों, तो मैं उनका स्वागत करूँगा । लेकिन अगर वे स्वार्थ के लिए इकट्ठा हुई हों, सारी दुनिया को अलग मान कर अपना-अपना उल्लू सधे, यही खयाल वे रखती हों, तो वह खतरा है ।

अभी बड़ा बंबई राज्य बना, तब खुशी प्रकट करते हुए मैंने कहा था कि व्यापकता के लिए मैं अभिनंदन करता हूँ। खुशी की बात है कि गुजराती और मराठी, ये दोनों जमातें यहाँ इकट्ठा हुई हैं । दोनों की बुद्धिमत्ता इकट्ठा होकर गरीबों की सेवा में लगे तो वह अभिनंदनीय कार्य है । परंतु दोनों में से बड़ी जमातें अपना-अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए इकट्ठी हो जायँ—अक्सर राज्य-कारोबार में बड़े लोग ही सामने आते हैं—और दोनों मिल कर नीचे वालों को लूटें, तो कहना होगा कि दोनों एकसाथ आने से दुनिया को लाभ पहुँचाने के बदले उन्होंने हानि ही पहुँचायी है। आज दुनिया में छोटी-छोटी जमातों के बीच जो सहयोग होता है, वह व्यापक दृष्टि से, सेवा के लिए हो, तो अच्छा है । परंतु वैसा न हो, तो बड़े-बड़े राष्ट्र भी इकट्ठा होते हैं, तो उसमें खतरा है । राष्ट्रवाद एक अच्छी चीज मानी गयी है। हिंदुस्तान में पचास साल से यही कहा गया है कि देशाभिमान की जरूरत है । परंतु यूरोप के जैसा राष्ट्रवाद यहाँ न आये, इसकी ओर यहाँ के ज्ञानियों ने ध्यान खींचने की कोशिश की। दो ही नाम मुझे विशेष याद आ रहे हैं–महात्मा गांधीजी और रवीन्द्रनाथ टागोर। उन्होंने यह कोशिश की कि हमारा राष्ट्रवाद खतरनाक न बने । उन्होंने कहा कि राष्ट्राभिमान ठीक है, परंतु उसमें संकुचितता नहीं आनी चाहिए । हम अपने देश के लिए आज़ादी चाहते हैं, परंतु आजाद होकर हम दुनिया के लिए भयावह भी बन सकते हैं और सुखावह भी। हमें जो आजादी चाहिए, वह दुनिया के लिए सुखावह बनने के लिए चाहिए । सारी दुनिया में हमारी आजादी से शांति की स्थापना हो, तो हमारी आजादी, हमारी राष्ट्रीयता अच्छी है, वरना वह अच्छी नहीं है । कई राष्ट्रों ने आजादी के बाद दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण किया । बचपन में हम जापान और इटली के गीत गाया करते थे, परंतु आपने देखा कि उन देशों ने आजादी के बाद दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण किया। इस तरह आजादी के बाद राष्ट्र की बुद्धि का उपयोग स्वार्थ के लिए करके हम अपने नजदीक के देशों के लिए भी खतरा बन सकते थे । परंतु खुशी की बात है कि गांधीजी ने और रवि ठाकुर ने हमें जो तालीम दी थी, उसे हम आजादी के बाद भी भूले नहीं ।

तो, छोटी जमातों का मुख्य कार्य यह है कि अपने गुणों का विकास करते हुए वह उन गुणों को परमेश्वर की और आम समाज की सेवा में समर्पित करे । अपने गुणों का उपयोग स्वार्थ के लिए किया जाय, तो गुण भी दोषरूप बन जाते हैं । गुजराती-मराठी, दोनों जमातें भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कुशल मानी जाती हैं । उनकी कुशलता का उपयोग दुनिया की सेवा के लिए भी हो सकता है और वे दुनिया के लिए भयावह भी बन सकती हैं ! आप इतनी दूर दक्षिण में आये हैं, तो अपने प्रांत को कभी बदनाम न होने दें, अपने को अपने प्रांत की इज्जत के ट्रस्टी समझें । यहाँ के लोगों को आपका जो अनुभव आवेगा, उस पर से वे बंबई राज्य में रहने वाली आपकी कुल जमातों के बारे में अपना खयाल बनायेंगे। अगर यहाँ की जमातें सेवा में लगी हुई होंगी, तो आपके प्रांत के लिए इज्जत पैदा होगी, अन्यथा विपरीत भावना निर्माण होगी । इस दृष्टि से भी सेवा में तन्मय हो जाना आपका धर्म है। हृदय में जितनी शुद्धि होगी, उतनी दुनिया की सेवा बनेगी; शरीरशक्ति, कर्मशक्ति और बुद्धिशक्ति से भी उतना काम नहीं होगा।

और एक बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ, जो भूदान के लिए नहीं, बल्कि आत्मकल्याण के लिए है । मनुष्य एक हद तक ही गृहस्थाश्रम में रहता है, तो उसका विकास होता है । बच्चा गुरु के घर अध्ययन करता है, उस समय उस पर कोई खास जिम्मेवारी नहीं रहती है; परंतु वह गृहस्थ बनता है, तब जिम्मेवारी आती है, जिससे उसके कई गुणों का विकास होता है । परंतु धीरे-धीरे घर और व्यापार जम जाता है, उम्र भी हो जाती है । मनुष्य का चित्त निरंतर उसी घर में मरने तक लगा रहता है, जिसके कारण कई झगड़े पैदा होते हैं । आज वानप्रस्थाश्रम की वृत्ति हमारे समाज में से खत्म हो गयी है । अतः हम कोई ४५-५० साल की उम्र के बाद या कोई भाग्यवान हो, तो ४० साल के बाद ही अपना चित्त विषयवासना से हटायें । कोई ऐसे भी भाग्यवान हो सकते हैं, जो विषयवासना में ही न पड़ें । कॅथोलिक्स में और जैनों में इस तरह की वृत्ति पायी जाती है । आज हिंदुस्तान में जनसंख्या अधिक है, इसलिए भी संतान-वृद्धि की जरूरत नहीं है। ब्रह्मचारी स्त्री-पुरुष निकलें, तो अच्छा ही है। परंतु चालीस साल के बाद तो शुद्ध, निष्काम सेवा में लगना उचित है । ऐसे वानप्रस्थों का खर्चा घर से होगा । इसलिए समाज पर उनका भार भी नहीं पड़ेगा । बिल्कुल अंतिम समय में वानप्रस्थ नहीं बनना है । आध्यात्मिक उन्नति के लिए यह जरूरी है कि जब इन्द्रियों में शक्ति हो, उसी समय वासना से मुक्त होकर समाज की सेवा में लगें । उसीसे व्यक्ति की और समाज की सच्ची उन्नति सधेगी, जो आज रुक गयी है ।

(गुजराती-महाराष्ट्रीय लोगों के साथ, कोइंबतूर, १-१०-'५६)

कौमी झंडा

कुछ हफ्तों पूर्व इण्डियन स्टॅण्डर्ड्स इंस्टिटयूशन ने राष्ट्रीय झण्डे का डिज़ाइन, रंग और कपड़ा कैसा होना चाहिए, इसकी पूरी तफसील प्रकाशित की है ।

आज का कौमी झण्डा राष्ट्र के लिए एक लांछन है । वह एक चिन्धी मात्र है—कपड़े की तीन धज्जियाँ एकत्र सिली होती हैं और उस पर एक डिज़ाइन छपी रहती है । कौमी झण्डा जिस कल्पना का प्रतीक है, उसका अभिमान तो हमको चाहिए, पर साथ ही साथ वह जिस मसाले से बना है, उसका भी हमें अभिमान होना चाहिए । सदियों से हमारा देश हाथ-करघे की बुनाई के लिए प्रसिद्ध है । क्या हम तीनों रंग और उसके ऊपर के डिज़ाइन का अखण्ड कपड़ा नहीं बुन सकते ? थोड़ी-सी बुद्धि रखने वाला हाथ-करघे का बुनकर उसे जरूर बुन सकेगा । आजादी हासिल करने के दस साल बाद भी हम ऐसा कौमी झण्डा नहीं बना सके, जिस पर हमें गर्व हो सके ! हमारी कला-चातुरी के लिए यह लांछन है !

क्या ही अच्छा होता यदि इण्डियन स्टॅण्डर्ड्स इन्स्टिटयूट झण्डे के इस पहलू पर भी सोचता और उसका इन्तजाम करता । अभी भी भूल सुधारी जा सकती है ।

('ग्रामोद्योग पत्रिका' से) —जो. कॉ. कुमारप्पा

लायसेन्स नं. ए. ३४ रजिस्टर्ड नंबर ए. ३५४
(पहले से डाक-महसूल दिये बिना भेजने का परवाना प्राप्त)

बिहार और विनोबा

(दामोदरदास मूँदड़ा)

बिहार की भूमि छोड़े विनोबा को साढ़े इक्कीस माह हो गये हैं, पर विनोबाजी का मन बिहार में ही रहता है, उनके प्रवचनों में अक्सर बिहार का जिक्र रहता है और वहाँ के मित्रों के लिए और बिहार के प्रेम के लिए वे पुनः वहाँ आ भी सकते हैं!

'माँगो और पावो', ऐसा वातावरण बिहार में सर्वत्र निर्माण हुआ है। आधे गाँवों में ही हम पहुँच पाये,' पर तेईस लाख एकड़ जमीन जुटा ली गयी है। बिहार का षष्ठांश वाला इष्टांक प्राप्त होने में विनोबाजी को कोई संदेह नहीं है। उनके बिहार छोड़ने के बाद बिहारवासियों पर केवल वितरण की जिम्मेवारी थी, फिर भी यहाँ के मित्रों ने दो लाख एकड़ भूमि प्राप्त की है। तो जो काम बिहार में हो सकता है, वह अन्य प्रांतों में क्या नहीं हो सकता? यह सवाल विनोबाजी सबसे पूछते हैं।

अक्सर लोग पूछते हैं कि क्या भूदान से दाता का हृदय-परिवर्तन हुआ है? जवाब देने में विनोबाजी को अक्सर यहाँ का ही स्मरण होता है। अनेक छोटे-बड़े भूमिवानों ने न सिर्फ भूमि दी, बल्कि अपना समय दिया, यहाँ तक कि जीवन-दान तक दे दिया और वानप्रस्थ बन कर गाँव-गाँव घूम रहे हैं। राँची के राजा-पालकोट का इतिहास जो जानते हैं, वे इस निवेदन की यथार्थता सहज समझ सकते हैं। राजा-साहब ने न सिर्फ अपनी भूमि प्रदान की, गत वर्ष उन्होंने विनोबाजी के प्रेरणा से और विनोबाजी के आशीर्वादसहित वानप्रस्थ की दीक्षा भी ग्रहण की और इस बार कांचीपुरी में जीवनदान भी दे दिया। पलामू के श्री बच्चू बाबू का उदाहरण लोगों के सामने है ही। हमारे भूदान-बोर्ड के अध्यक्ष और गया जिला-कमेटी के सदस्य श्री गौरी बाबू को तो सभी जानते हैं। ऐसे और अनेक नाम दोहराये जा सकते हैं, जिनमें 'हृदय-परिवर्तन' का दर्शन होता है।

तीसरी विशेषता है, यहाँ की बेदखली की समस्या का हल। यह समस्या सर्वत्र है, पर बिहार ने इसे अपने ढंग से सुलझाने की कोशिश की है। भूमिवानों से संपर्क कायम करके बेदखल होने वाले से जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक भूदान प्राप्त करने की क्रिया बेदखली का लाजवाब उपाय है। दस्तावेज और गवाहें, दोनों के अभाव में और पैसे के प्रभाव के कारण जमीन को जोतने वाला जोतने का हकदार होते हुए भी जमीन अपने पास रख नहीं पाता। बिहार-भूदान-समिति का सुझाव उसकी सद्भावनाओं को जगा कर बेदखली को रोकने का विधायक मार्ग सुझाता है।

पर आज सीलिंग का जो सुझाव बिहार-धारा-सभा में प्रस्तुत है, उससे विनोबा को जबर्दस्त ठेस पहुँची है। उन्हें विश्वास है कि बिहार-विधान-सभा के सदस्य, जो कि अपने को यहाँ की जनता के प्रतिनिधि मानते हैं और हैं भी, भूमि-समस्या को हल करने में सीलिंग की मात्रा ऐसी नहीं रखेंगे कि भूदान के द्वारा जो वातावरण बिहार में बना है, उसमें कोई नुकसान पहुँचे। उसका असर न सिर्फ बिहार पर, अपितु सारे देश पर खराब होगा! स्वयं विनोबाजी को यद्यपि सीलिंग का विचार ही मान्य नहीं है और यद्यपि वे फ्लोअरिंग के विचार को ही पसंद करते हैं, पर सीलिंग के संबंध में बिहार-भूदान-समिति ने जो सुझाव यहाँ के मुख्य मंत्री की सेवा में पेश किया है, उसे विनोबाजी ने स्वीकृति दी है। उनका विश्वास है कि बिहार मंत्री-मण्डल के सुयोग्य सदस्य तथा यहाँ के विधिनिर्माता ऐसा ही विधेयक बनायेंगे, जो उन सुझावों के अनुकूल हो।

पलामू से विनोबाजी भूमिक्रांति की अपेक्षा रखते हैं। वैसी भूमि-क्रांति, जैसी उत्कल के कोरापुट में हुई है, क्योंकि उसके लिए आवश्यक वातावरण पलामू में मौजूद है। उत्कल की तरह यहाँ भी अच्छे और प्रभावी सेवकों की कमी नहीं है और बाँट कर खाने के सिद्धान्त के मानने वाले सुसंस्कृत आदिवासी भाइयों की संख्या कोरापुट की तरह यहाँ भी पर्याप्त मात्रा में है।

(पलामू में पत्रकारों से वार्ता, १५-१०-'५६)

बिहार जनक्रांति की ओर

भूदान-आंदोलन जनआधारित बनाने की दृष्टि से सभी जिला-समितियों का निर्माण सर्वसम्मति से हो, ऐसा बिहार ने तय किया और सर्वसंमति से संगठनों का निर्माण सौजन्यपूर्ण तरीके से हुआ देख कर कार्यकर्ताओं का उत्साह भी बढ़ा। २८ सितंबर '५६ को पटना में बिहार प्रांत के सभी कर्मठ कार्यकर्ताओं ने सर्वसम्मति से एकराय होकर अगले सम्मेलन तक का कार्यक्रम तय किया और प्रांतीय संगठन का भी निर्णय किया। समूचे प्रांत के १५० कार्यकर्ताओं ने साल भर का कार्यक्रम उत्साहपूर्वक तय किया। बिहार ने 'सर्वसम्मति' का यह सफल प्रयोग करके जनक्रांति की दिशा में स्वयं को तो आगे बढ़ाया ही है, सारे देश को भी आगे बढ़ने का प्रोत्साहन और मार्गदर्शन किया है। सम्मेलन में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए।*

श्री वैद्यनाथ बाबू के नेतृत्व में अखंड सघन पदयात्रा का संचालन और मार्गदर्शन हो और प्रांत भर में यह कार्यक्रम चले, सघन पदयात्रा और जन-आधारित वितरण के सामूहिक प्रयोग के साथ ही रचना और निर्माण का कार्य चले, दान में मिले गाँवों के निर्माण के कार्य में ध्यान दें, ये बातें भी तय हुईं। संपत्तिदान का काम बिहार में काफी हुआ है। इस काम में विशेष प्रगति की दृष्टि से श्री हीरालाल सर्राफ विशेष अनुभव के लिए बंबई की संपत्तिदान यात्रा में सम्मिलित होने के लिए भी गये थे। इस काम के लिए भी एक समिति बनी।

"भूदान-यज्ञ" पत्रिका के अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाने, साहित्य-बिक्री करने तथा विद्यार्थियों में अधिकाधिक प्रवेश करने का निश्चय हुआ। —रामवृक्ष शास्त्री

* कुछ निर्णय ता० १२ अक्टूबर के 'भूदान-यज्ञ' में छपे हैं।

औसत जीवन से अधिक!

...बचपन में पराधीन रह कर भी आत्मसुख का जो लाभ मिला, वह आगे चल कर सब नष्ट हुआ, जब पैसा प्राप्त करने के लिए व्यापार, नौकरी आदि में प्रवेश किया! आखिर भगवान् ने दूकान जला दी और मुझे शुद्धि पर ला दिया। पंढरपुर के संत-समागम ने मेरे लिए सेवामार्ग खुला किया। संकट कम नहीं आये। पिता गुजरे, आर्थिक संकट आया, पर लोगों ने मदद भी बहुत की। व्यापार के लिए भी प्रेरित किया। लेकिन एक बार के अनुभव ने सावधान कर दिया।

वार्शी में १५ वर्ष, दिघोल में १५ वर्ष और नगर में १५ वर्ष, ऐसे ४५ साल सेवाकार्य में फिर बीते। अब आखिर का संन्यास-आश्रम मान कर जीवन चल रहा है। सर्वोदय की साधना ही अब जीवन का लक्ष्य है। औसत जीवन से ज्यादा जीवन जी रहा हूँ, ऐसी मन में भावना है, इसलिए एक-एक क्षण भी व्यर्थ न जाय, ऐसा लगता है। अहिंसा की साधना सरल नहीं है, लेकिन विनोबाजी का आशीर्वाद परिव्रज्या करा रहा है। —शं० भा० दिघोळकर

(श्री वल्लभस्वामी के नाम आये एक पत्र से।)

विनोबाजी का इरोड तहसील की पदयात्रा का कार्यक्रम :

अक्टूबर ता० २६ प्रातः चिन्नियम्पालयम्, सायं अेजुमाथुर; ता० २७ प्रातः शिवगिरी, सायं तंडम्पालयम्; २८ प्रातः कस्तूरबाग्राम।

पताः—c/o तमिलनाड भूदान-समिति १३, गांधीजी रोड, इरोड. ERODE (Dist-Coimbtore)

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	प्रांतों का पुनर्निर्माण और नवयुवक	विनोबा	१
२.	शांतिवादियों से : गंभीर दर्शन की अपेक्षा—	आचार्य श्री तुलसी	२
३.	विल्फ्रेड वेलॉक का पत्र और मशीनें	बाळासाहेब खेर	३
४.	ग्रामदानी गाँवों की निर्माण-प्रगति : उड़ीसा	अ० वा० सहस्रबुद्धे	३
५.	पंचामृत	—	४
६.	मनुष्य के दो दुश्मन!	विनोबा	६
७.	सर्वदा समः सर्वेण समः	काका कालेलकर	६
८.	जब शंकराचार्य की कोटि की स्त्री निकलेगी!	विनोबा	७
९.	'अल्हम्दुलिल्लाह' के मानी	रैहाना तैयबजी	७
१०.	ग्रामोद्योगों की दृष्टि कैसी हो?	झवेरभाई पटेल	८
११.	अंबर चरखे के बारे में एक सुझाव	देवेन्द्र कुमार	८
१२.	वर्षगाँठ	आसाराम वर्मा	९
१३.	स्वदेशी और ग्रामोद्योग की तात्त्विक भूमिका	नेमिशरण मित्तल	९
१४.	भिखारी!	"साधक"	१०
१५.	प्रांत-प्रांत की प्रवासी जमातों से—	विनोबा	११
१६.	कौमी झंडा	जो. कॉ. कुमारप्पा	११
१७.	बिहार और विनोबा	दामोदरदास मूदड़ा	१२

सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री अ०भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी। फोन नं० १२५८

www.vinoba.in